International Journal of Social Science & Management Studies (Peer Reviewed & Refereed Research Journal) I.J.S.S.M.S.
& Impact factor - 3.9 Research Journal
ISSN : 2454 - 4655, Vol. - 4, No. – 12 Jan. 2019

vkReijd dforkvk d dfo % f=ykpu

अशोक कुमार सिंह

त्रिलोचन एक विषम धरातल के कवि हैं। उनके रचनात्मक व्यक्तित्व में एक विरोधाभास दिखाई पड़ता है। जहां एक ओर गांव की धरती सा ऊबड़–खाबड़ तो दूसरी ओर कला की दृष्टि से एक अद्‌भुत क्लासिकी कसाव या अनुशासन भरा भाव। सृजनात्मक अनुशासन का सबसे विलक्षण रूप त्रिलोचन के सानेट में मिलता है। सॉनेट जैसे विजातीय काव्यरूप को हिंदी भाषा को सहज लय और संगीत में ढालकर त्रिलोचन ने एक नई काव्य–विधा का आविष्कार किया, जो हिंदी की विरासत बन गई।

त्रिलोचन का जन्म 20 अगस्त, 1917 को सुल्तानपुर जिले के चिरानीपट्‌टी के गांव कटघरापट्‌टी में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा अरबी–फारसी में हुई थी। बाद में उन्हें साहित्य रत्न और शास्त्री की उपाधि प्रदान की गई। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से अंगरेजी में एम.ए. पूर्वाद्ध तक की शिक्षा प्राप्त की थी। शिक्षा के बाद 1952–53 में गणेशाय नेशनल इंटर कॉलेज, जौनपुर में अंगरेजी के प्रवक्ता रहे। सन् 1967–72 के दौरान वाराणसी में विदेशी छात्रों को हिंदी, संस्कृत और उर्दू की व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की। उर्दू विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की द्वैभाषिक कोश (उर्दू–हिंदी) परियोजना में (1978–84) महत्त्वपूर्ण कार्य किया। त्रिलोचन जी मुक्तिबोध सृजनपीठ एवं डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के हिंदी विभाग के अध्यक्ष भी रहे।

त्रिलोचन का काव्य–व्यक्तित्व 50–60 वर्षों के लंबे काल–विस्तार में फैला हुआ है। वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण कवि रहे हैं। उनके हर नए काव्य संग्रह के साथ उनका व्यक्तित्व और गहराता चला गया था। ''स्वतंत्रता के कुछ वर्षों बाद भारतीय सांस्कृतिक चेतना पर पश्चिमी का औपनिवेशिक दबाव कम हुआ, आधुनिकतावाद द्वारा स्थापित तथा प्रस्तावित बहुत–से काव्यमूल्य संदिग्ध या अस्वीकार्य लगने लगे थे तब कुल मिलाकर कविता में और किसी हद तक साहित्य की अन्य विधाओं में भी–अपने यथार्थ के मूल स्रोतों से जुड़ने की आकांक्षा प्रबल हुई है। फलतः नगर केंद्रित आधुनिक सृजनशीलता और ग्रामोंन्मुखी जातीय सृजन–चेतना के बीच का अंतराल कम हुआ। इसी बदले हुए माहौल में त्रिलोचन जी की कविता ने अपनी अर्थवत्ता नए सिरे से अर्जित की है और वृहत्तर पाठक समुदाय का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया था।''[1]

त्रिलोचन के काव्य संग्रह में आत्मपरक कविताओं की संख्या अधिक है। वे अपनी आत्मपरक कविताओं में 'त्रिलोचन' का प्रयोग प्रायः अन्य पुरुष में करते हैं और इस तरह कुशलता से अपने 'आत्म' से एक कलात्मक दूरी प्राप्त कर लेते हैं। अपने 'आत्म' के प्रति यह गहरी निर्मम दृष्टि उन्हें एक ऐसी शक्ति प्रदान करती है, जिसके चलते वे मानों अपनी ही धज्जियां उड़ाते हैं, और फिर अपने ही मुंह से बेलाग और तिलमिला देने वाली पंक्ति निकालते हैं 'भीख मांगते उसी त्रिलोचन को देखा कल'।

''भीख मांगते उसी त्रिलोचन को देखा कल
जिसको समझे था है तो है यह फौलादी।
ठेस–सी लगी मुझे, क्योंकि यह मन था आदी
नहीं झेल जाता श्रद्धा की चोट अचंचल,
नहीं संभाल सका अपने को। जाकर पूछा,
'भिक्षा से क्या मिलता है।''जीवन'' क्या इसको
अच्छा आप समझते हैं। ''दुनिया में जिसको
अच्छा नही समझते हैं करते हैं, छूछा
पेट काम तो नहीं करेगा।' मुझे आपसे
ऐसी आशा न थी।'' आप ही कहें, क्या करूं।''

अपने प्रति यह अचूक निर्मम दृष्टि समकालीन साहित्य में कम ही है।

''बिस्तरा है न चारपाई है,
जिन्दगी खूब हमने पाई है।''

'रैन बसेरा' कविता में त्रिलोचन की छवि समग्र चेतना के कवि के रूप में व्याख्यायित हुई। वहीं 'चम्पा काले अच्छर नहीं चीन्हती' जैसी सीधी सरल कविता में दिखाई पड़ता है।

---

[1] केदारनाथ भूमिका प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 1985

''मैं जब पढ़ने लगता हूं वह आ जाती है
खड़ी–खड़ी चुपचाप सुना करती है
उसे बड़ा अचरज होता है।
इन काले चिह्नों से कैसे ये सब स्वर
निकला करते हैं।''

वास्तविकता यह है कि त्रिलोचन को सहज–सरल–सी प्रतीक होने वाली कविताओं को भी यदि ध्यान से देखा जाए तो उनकी तह में अनुभव की कई परतें खुलती दिखाई पड़ती हैं।

उनकी प्रकाशित कृतियों में कविता संग्रह – धरती (1945), गुलाब और बुलबुल (1956), दिगंत (1957), ताप के ताए हुए दिन (1980), शब्द (1980), उस जनपद का कवि हूं (1981), अरधान (1984), तुम्हें सौपता हूं (1985), अनकही भी कुछ कहती है (1985), फूल नाम हे एक (1985), सबका अपना आकाश (1987), चैती (1987),अमोला (1990), मेरा घर (2002), जीने की कला (2004)।

कहानी संग्रह – देशकाल (1986), डायरी : रोजनामचा (1992), आलोचना : काव्य और अर्थबोध (1995), संपादन : मुक्तिबोध की कविताएं (1991)।

अन्य : प्रतिनिधि कविताएं (1985), सं, केदारनाथ सिंह, साक्षात् त्रिलोचन (1990), लंबी बातचीत–दिविक रमेश/कमलकांत द्विवेदीः त्रिलोचन के बारे में (1994), सं, गोविन्द प्रसाद : त्रिलोचन संचयिता (2002), सं, ध्रुव शुक्ल : मेरे साक्षात्कार (2004), बातचीत –सं, श्याम सुशील : बात मेरी कविता (2009) त्रिलोचन की चुनी हुई अपनी कविताएं।

त्रिलोचन, कई पुरस्कारों से सम्मानित हुए– पुरस्कार जिनमें प्रमुख हैं : साहित्य अकादमी पुरस्कार, उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान सम्मान–पुरस्कार, मैथलीशरण गुप्त सम्मान, मध्यप्रदेश; हिंदी अकादमी, दिल्ली का शलाका सम्मान, मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् का भवानी प्रसाद मिश्र राष्ट्रीय पुरस्कार, सुलभ साहित्य अकादमी पुरस्कार, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता सम्मान; उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का महात्मा गांधी सम्मान आदि।

त्रिलोचन, निराला की तरह एक 'बहुवस्तुस्पर्शिणी' प्रतिभा के कवि हैं और इसीलिए उनके काव्य में विविधता बहुत है। 'ताप के ताए हुए दिन' की भूमिका में कवि ने लिखा कि 'सामान्य सत्य का विशेषीकरण' होता है।[2] केदारनाथ सिंह इस पर कहते हैं कि ''त्रिलोचन की अधिकांश अच्छी कविताओं पर सबसे सटीक टिप्पणी हो सकती है। इसी भूमिका में उन्होंने आधुनिक काल के पूरे काव्य परिदृश्य की एक सीमा की ओर भी संकेत किया था और वह यह कि अभी हिंदी में 'जागरूक पाठक और कवि के मध्य सीधा संबंध दिखाई नहीं पड़ता'। अंत में उन्होंने यह उम्मीद भी जाहिर की थी कि 'शायद वह आगे कभी हो'।[3] केदारनाथ सिंह लिखते हैं कि बाद के कुछ वर्षों में त्रिलोचन की कविता और हिंदी पाठक के बीच वह संबंध अधिक गहरा हुआ है और उनके काव्य–व्यक्तित्व की समकालीन हिंदी कविता पर पड़ती लम्बी परछाई को भी देखा–परखा जाने लगा है।

बाद की अपनी एक कविता में त्रिलोचन स्वयं पर एक मार्मिक टिप्पणी करते हैं–

''मैंने करने जैसा
क्या कोई काम किया
शब्द ही तो थे केवल
खेलता रहा जिनसे
मैं जी–भर
कुछ होंगे आगे भी
जिनका नाता होगा शब्दों से
वे ही उन शब्दों को देखेंगे
जिन्हें मैंने
बोधा है।''

जीवन यापन के लिए उन्होंने पत्रकारिता और अध्यापन कार्य किया। हंस, कहानी, वानर, प्रदीप, चित्ररेखा, आज, समाज और जनवार्ता आदि पत्र–पत्रिकाओं का आपने संपादन भी किया है।

भाषा के प्रति त्रिलोचन एक बेद सजग कवि हैं– एक ऐसे कवि जो अपनी भाषा की समस्त गूंजों और अनुगूंजों को जानते थे और एक रचनाकार की हैसियत से उनके प्रति गहरा सम्मान का भाव रखते थे। यही कारण रहा कि उनकी कविताओं में विविध धरातल

[2] त्रिलोचन, भूमिका, 'ताप के ताए हुए दिन' का दूसरा संस्करण, पृ. 4

[3] केदारनाथ सिंह, भूमिका, त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएं, द्वितीय संस्करण, पृ. 10

दिखाई पड़ते हैं। वे ठेठ अवध के कवि हैं और फलतः अवधी बोली की सर्जनात्मक क्षमता से खड़ी बोली को अधिक आत्मीय और अधिक व्यजनाक्षम बनाने के आग्रही कवि भी। त्रिलोचन के आदर्श तुलसीदास जी रहे हैं, जहां कविता के साथ बोली के सारे ठाट और अभिव्यक्ति की सारी परिचित–अपरिचित भंगिमाओं को अपने भीतर समेटकर चलती है। इसीलिए त्रिलोचन की कविता में बोली के अपरिचित शबद जितनी सहजता से आते हैं, कई बार संस्कृत के कठिन और लगभग प्रवाहच्युत शब्द भी उतनी ही सहजता से कविता में प्रवेश करते हैं और चुपचाप अपनी जगह बना लेते हैं।

त्रिलोचन से 'हिंदी' की शब्द की उस भाषीय संपदा का बोध होता है उसकी संपूर्णता को अपनी रचनाशीलता के विविध स्तरों पर पकड़ने और उद्‌घाटित करने वाले कवि हैं। अतः त्रिलोचन एक ऐसे कवि हैं जिनके यहां भाषा की श्रेणियां नहीं बनाई जा सकती हैं।

त्रिलोचन जितने मानव–संघर्ष के कवि हैं, उतने ही प्रकृति की लीला और सौंदर्य के भी कवि हैं। इसीलिए प्रकृति बहुत गहराई तक उनकी कविता में रची बसी है। प्रकृति के बारे में त्रिलोचन का दृष्टिकोण बहुत–कुछ उस ठेठ भारतीय किसान के दृष्टिकोण जैसा हे जो कठिन श्रम के बीच भी उगते हुए पौधों की हरियाली को देखकर रोमांचित होता है। निराला की तरह त्रिलोचन ने भी पावस पर अनेक कविताएं लिखी हैं। बादलों के कठोर संगीत को अपनी अनेक कविताओं में बरसाने का प्रयास किया है। पावस की कविता लिखने के लिए वे किसी विलक्षण सौंदर्य–लोक का निर्माण नहीं करते, बल्कि अपनी चेतना के किसी कोने में दबे हुए किसान का मानों आह्‌वान करते हैं ''उठ किसान ओ, उठ किसान ओ, बादल घिर आए।'' प्रकृति और जीवन के प्रति यह किसान–सुलभ दृष्टि त्रिलोचन की एक ऐसी विशेषता हे, जो सिर्फ उनकी अलग पहचान ही हीं बनाती, बल्कि उनकी विश्व–दृष्टि को समझने की कुंजी भी हमें देती है।

अंततः त्रिलोचन का निधन 09 दिसंबर, 2007 को हुआ। इस तरह एक अवधी भाषा का उत्कृष्ट रचनाकार हमारे बीच से चला गया और अपनी अनकही कविताओं से काव्य जगत् को वंचित कर गया।

lanHkZ xzaFk %&

1. त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएं, संपादक केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2017
2. दिगंत कविता संग्रह – त्रिलोचन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2006
3. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

International Journal of Social Science & Management Studies (Peer Reviewed & Refereed Research Journal) I.J.S.S.M.S.
& Impact factor - 3.9 Research Journal
ISSN : 2454 - 4655, Vol. - 4, No. – 12 Jan. 2019

xkM+ tutkfr ij lapkj izkS|ksfxdh dk izHkko ¼rglhy fcfN;k
जिला मंडला के विशेषk lanHkZ esa½

fuf[ky pkjfl;k
शोधार्थी, (एम. फिल. समाजशास्त्र), समाजशास्त्र व समाजकार्य विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

प्रस्तुत शोधपत्र मंडला जिले की बिछिया तहसील के अंतर्गत गोड़ जनजाति पर किए जा रहे अध्ययन व संदर्भ ग्रंथ द्वारा प्राप्त जानकारी पर आधारित है।

मण्डला जिला मध्यप्रदेश के अंतर्गत नर्मदा नदी के किनारे बसा हुआ आदिवासी जिला है जहाँ पर विशेष रूप से गौंड़, बैगा, जनजातियां निवास करती है। मंडला जिलें की भौगोलिक स्थिति 22̇ 2 से 23̇ 2 उत्तरी अंक्षाश तथा 60̇ 9 से 61̇ 5 पूर्वी देशांतर के मध्य हैं मण्डला जिलें के नामकरण के संबंध में कहा जाता है कि मदन मिश्र नामक प्रकाण्ड विद्वान यहा के निवासी ये उनके नाम पर ही इसका नामकरण किया गया।

मंडला जिले में रामनगर प्रसारित व अन्य प्रमाणों से सिद्ध होता है कि 1200 ई. के लगभग गढ़ा मण्डला में गोड़ राज्य की स्थापना हो चुकी थी इसका उल्लेख पृथ्वीराज रासों में भी है गढ़ा मण्डला के गोड़ राजाओ की वंशावली 1617 ई. में रामनगर के के मंदिर में राजा हद्‌यशाह ने अंकित करवाई शासन काल इसी संदर्भ में हीरालाल लिखते है कि संग्राम शाह 1480 ई. से 1530 के समय गोड़ो का उदय का समय था।

गोड़ संख्यात्मक दृष्टि से ही नही अपितु राजनैतिक व ऐतिहासिक संदर्भो में न केवल म. प्र. अपितु भारत के प्रमुखतम आदिवासी है। म.प्र. के एक बड़े हिस्से में सफलता पूर्वक राज्य किया।

गोड़ जनजाति समुदाय का जीवन प्रकृति पर आधारित रहा है। आखेट युग से लेकर आधुनिक युग तक उसकी जीवन शैली सामाजिक व्यवस्था, रीतिरिवाज, धार्मिक विश्वास खान पान रहन सहन, अचार विचार प्रथाए इत्यादि गैर जनजाति समाज से भिन्न है

oSKkfud ;qx ls nwj vk/kqfud dh df=erk ls vkj tfVyrk ls nwj ,oa Hkkxoknh thou ls ifjfpr ,dkar o 'kkar izd`fr dh xksn esa jgus okys ;s yksx vkt Hkh viuh ijaijk o :f<+;ksa ls viuh e;kZnk o laLdkjksa ls lapkfyr समाजिकता का परिचय देते है।

वर्तमान समय में सूचना प्रौद्योगिकी एक ऐसी क्रांतिकारी विज्ञान है जिसने जनजाति जीवन के अनेक पहुलओं को प्रभावित किया है

सूचना प्रौद्योगिकी वह तकनीक जो ब्रम्हांड में कही भी उपलब्ध हों किसी सी समय किसी भी व्यक्ति द्वारा उपलब्ध करायी जा सकती हैं समाज के संपूर्ण विकास के लिए यह एक आव यक महत्वपूर्ण स्तंभ है।

सूचना प्रौद्योगिकी दो शब्दों का मेल है सूचना का अर्थ ज्ञान होनें की स्थिति या ज्ञान के भंडारण या ज्ञान प्राप्ति से है प्रौद्योगिकी का अर्थ ऐसी तकनीक से है जिससे ज्ञान का प्रयोग करते है इस प्रकार संगणित रूप सूचना प्रौद्योगिकी एक ऐसी संचार तकनीक है जिसमें सूचनाओं का सृजन भडांरण प्रंसस्करण व उसका प्रसारण सम्मिलित हैं। सूचना प्रौद्योगिकी को एक ऐसी प्रौद्योगिकी के रूप में स्पष्ट एवं परिभाषित किया गया है जो संसार में किसी भी व्यक्ति के साथ कहीं पर भी होने वाली घटना के बारे में सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध कराती है। इसलिये सूचना को समाज का मूल स्त्रोत कहा जा सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी ने समाज के विकास की प्रकि्रया की गति को तीव्र कर दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा निकट अतीत में कुछ ऐसे अभूतपूर्व व्यापक, लेकिन कल्पनाशील तकनीकी विकास हुये, जिन्होंने संसार में रह रहे बहुत बड़ी संख्या में लोगों को एक ही नेटवर्क से जोड़ना संभव बना दिया है। अतः आज के समाज को सूचना समाज कहा जाता हैं, क्योकि सूचना के द्वारा आम नागरिकों को एक–दूसरे से जोड़ने का कार्य होता है। इन्हीं सूचना के सुपरहाइवे ने सूचना एवं आंकड़ों के प्रवाह ने घनिष्ठ रूप से जुड़े हुये समाज की रचना की है। आज समाज का हर नागरिक विश्व सूचना तक पहुंच सकता है। वह असंख्य स्त्रोतों में से भी ज्ञान हासिल कर सकता है। एक आम व्यक्ति इंटरनेट और

ई–मेल के द्वारा किसी भी क्षेत्र के विशेषज्ञ तथा डॉक्टर से सम्पर्क करके उचित परामर्श हासिल कर सकता है।

सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभाव से गोड़ जनजाति भी आछूति नही है जनजातियों के विकास में सूचना प्रौद्योगकी ने एक नवीन क्रांति ला दी है जिससे जनजाति क्षेत्रों में भी प्रत्येक व्यक्ति कम्प्यूटर के बारे में जानने लगा है। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से सरकार ने आदिवासियों के जीवन में सार्थक बदलाव लाने का प्रयास किया है। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से ऐसे समाधान सरकार द्वारा किए जा रहे हैं जिससे जनजाति क्षेत्र के लोग निरंतर इसका प्रयोग कर सके। कृषि सिंचाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, संचार व जैव प्रौद्योगिकी से गौंड़ जनजाति में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। आज गौंड़ जनजाति के लोग मौसम की जानकारियां कृषि मण्डियों में कृषि उपज के दाम, मोबाईल आधारित उपकरण, कृषि एप, वीडियों कॉफ्रेंस इत्यादि आधुनिक प्रौद्योगिकी माध्यमों से जानकारियां प्राप्त कर रहे हैं।

xkM tutkfr ij lpuk ik|kfxdh dk iHkko&

df"k d {k= e – वर्तमान अध्ययन क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी के कारण गोड़ जनजाति के कृषकों की दशा बदल रही है तथा कृषक खेती करने के लिए रासायनिक खाद आधुनिकता,उन्नत बीज, आधुनिक तथा टेलीविजन में प्रसारित होने वाली कृषि सबंधी कार्यक्रमों के माध्यम से कृषि उत्पादन कई गुना अधिक करने लगे है।

df"k lc/kh tkudkjh yu okyk mÙkjnkrk dk fooj.k %& कृषि में सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा तकनीक के प्रचार प्रसार से गोड़ जनजाति के लोग निम्न रूप से कृषि कार्य कर रहे है।

1. खेतों को जोतने व फसल काटनें में ट्रेक्टर, हार्वेस्टर व अन्य मशीन, उपकरण का उपयोग।
2. वैज्ञानिक रसायनिक खाद का उपयोग कर उपाद बढ़ाना।
3. परपंरागत कृषि पद्वति के स्थान पर आधुनिक कृषि अपनाना।
4. टेलीविजन, किसान कालसेंटर सामाचार पत्र, कृषि विभाग से जानकारी प्राप्त कर खेती करना।

v/;;u {k= mÙkjnkrkvk dk [krh dk rjhdk

क्र.	विवरण	उत्तरदाता संख्या	प्रति ात
1	परपंरागत तरीके	76	19
2	आधुनिक तरीके	243	60.75
3	दोनो	81	20.25
	योग	400	100

v/;;u {k=k e ;g ik;k tkrk gA fd 19% mÙkjnkrk ijijkxr df"kA 60-75% vk/kfud df"k] o 20-25% mÙkjnkrk nkuk dk viuk jg g 60-75 mÙkjnkrk e ekuk tkrk g fd vk/kfud df"k mRiknu l vkfFkd fLFkfr e mUufr gk jgh gA

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का egRoi.k ;kxnku g tu lpkj ek/;e d ipkj iLkj l vkt **जनजाति क्षेत्रों में शिक्षा का महत्व बढ़ा है।** lpuk ik|kfxdh u **शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश कर नवीन शिक्षण प्रक्रियाओं से** ifjiFk djk;k rFkk u, vk;ke LFkkfir fd, g v/;;u {k= e ;g ik;k x;k g fd ;gk d ykx vc

orZeku esa **शिक्षा प्राप्त करते हैं जनजाति क्षेत्र में मुख्य** 0;olk; d`f"k etnwjh gkrk ;k yfdu orZeku esa fofHkUu ljdkjh ;kstukvksa dk;ZdzEkksa rFkk fof/k lapuk ik|kfxdh lapuk r=ks **के कारण ग्रामीण परिवार में शिक्षा का स्तर बढ़ा है अध्ययन क्षेत्र में गोड़** tutkfr ds ykx fodHkUu ljdkjh ukdjh esa ik;s x, rFkk bu {ks=ks ds लोग अपने अध्ययन के लिए शहर की ओर गमन करने लगे। उत्तरदाताओं ने बताया है वे शिक्षा के क्षेत्र में व अब मोबाइल कम्प्यूटर यू–टयूब के द्वारा शिक्षा प्राप्त करते है।

vkfFkZd 0;oLFkk – प्रौद्योगिकी ने जनजातिय समाज की आर्थिक व्यवस्था में अभूतपूर्व परिवर्तन लाया है जनजाति अर्थव्यवस्था क्षेत्र कृषि व मजदूरी पर आधारित थी लेकिन प्रौद्योगिकी में उन्नति से कृषि उपकरणों, संचार व्यवस्था के विकास सें कृषि क्षेत्र मे उन्नति व कृषि उत्पादन में आमूलचूल परिवर्तन दिखाई दे रहा है।

आधुनिक सभ्यता समान व संचार साधनों के द्वारा व शिक्षा सम्पर्क से इनकी मजदूरी स्वरूप में भी बदलाव आया है।

आज वर्तमान में जनजाति क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग से लोग भूमि संबंधी दस्तावेजों को प्राप्त करने में मूलनिवासी जाति प्रमाण पत्र इनेक्ट्रॉनिक गर्वनेस के रूप में विभिन्न

सरकारी योजना जैसे इंदिरा गांधी वृद्ध पेंशन श्रमिक कार्ड पंजीयन प्रधानमंत्री आवास योजना, मनरेगा इत्यादि योजनाओं के संबंध में सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा लाभन्वित हो रहे है।

आज जनजाति के संस्कृति संरक्षण स्वास्थ्य सेवाओं, समस्या निवारण, जागरूकता संबधी विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों जाति व्यवस्था में परिवर्तन परिवार प्रणाली के स्थान पर एकाकी परिवार प्रणाली प्रचलन विवाह धार्मिक रीतिरिवाज अंधविश्वास जादू टोना में परिवर्तन हो रहा है।

fu"d"kZ %& अध्ययन क्षेत्र में अध्ययन उपरांत निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी गोड़ जनजाति के सामाजिक परिवर्तन की भूमिका में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है सूचना प्रौद्योगिकी से जनजाति में विकास की अपार समानताए नजर आ रही है आज ग्रामीण व शहरी विषमता धीरे धीरे समाप्त हो रही हैं ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट , टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर व अन्य तकनीक के माध्यम से सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर विकास कार्य किया जा रहा हैं सूचना प्रौद्योगिकी से ग्रामीण जीवन शैली में जागरूकता, मानसिकता स्पश्ट रूप से दिखाई देने लगी है। धर्मिक सूचना प्रौद्योगिकी अब आम आदमी सें जुड़ा हुआ विषय बन चुका हैं ई.–गर्वनेंस द्वारा विभिन्न लोक सेवाएं कम समय में व धन की बचत करनें वाले तरीकों से प्रदान की जा सकती हैं लोक सेवा को सुगम तरीके से म.प्र. सरकार . द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी को ग्रामीण अंचल तक ले जाया जा रहा है ताकि महात्मा गांधी के पंचायती राज्य विकास के सपंनों को पूरा किया जा सके।

lanHkZ xzaFk lwph &

1. अग्रवाल रामभरोसे 1988 गोंड़ जाति का सामाजिक अध्ययन गोंडों पब्लिक ट्रस्ट लोक संस्कृति संग्रहालय रेवातट मण्डला म.प्र.
2. तिवारी शिवकुमार शर्मा म.प्र. की जनजाति समाज एवं व्यवस्था म.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, रवीन्द्र नाथ ठाकुर मार्ग बाणगंगा भोपाल।
3. अग्रवाल गिरजा शंकर 2004 आदिवासी जिला मण्डला गोडी पब्लिक ट्रस्ट मण्डला।
4. शर्मा डॉ. वी. के. सूचना विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी विवेचनात्मक अध्ययन वाई के पबिलशर्स आगरा।
5. नीरज राव सूचना प्रौद्योगिकी व सामाजिक संरचना पब्लिशर्स आगरा।
6. जगदीश्वर चतुर्वेदी 2004 टेलीविजन संस्कृत राजनीति अनामिका पब्लिशर्स आगरा।
7. अशोक पाटिल भील जनजीवन और संस्कृत म.प्र. हिंदी ग्रंथ एकादमी।
8. बलराम साहू 2012 धार जिले के आर्थिक विकास में सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव।

International Journal of Social Science & Management Studies (Peer Reviewed & Refereed Research Journal) I.J.S.S.M.S.
& Impact factor - 3.9 Research Journal
ISSN : 2454 - 4655, Vol. - 4, No. – 12 Jan. 2019

foukn dekj 'kDy d miU;kl dk oLrxr v/;;u

cchrk oek

जब तक किसी बहते हुए प्रवाह के प्रतिकूल किसी सत्य की बुनियाद पर ठहरकर उपन्यास नई–नई रचनाओं के चित्र नहीं दिखलाता तब तक न तो उसे साहित्य की शक्ति ही प्राप्त होती है और न समाज के नवीन प्रवाहमान जीवन।

निराला 1930

उत्तर आधुनिक का यह दौर विजन के अंत का दौर है, महत्वपूर्ण उपन्यास कहीं न कहीं एक तरह के विजन के लिये नई विकलता का छटपटाहट व्यक्त करते हैं। विजय से हम क्या अर्थ ग्रहण करते हैं – अंतदृष्टि, सर्जनात्मक दृष्टि, कल्पना या औसत का अतिक्रमण इसकी अनिवार्य पहचान है। इस अर्थ में सामान्य किस्म की लोकप्रियता उपन्यास के महत्व की कोई निर्विवाद कसौटी नहीं है। कथा वृतांत के एक सहज लोकप्रिय पाठ और विजनरी पाठ में अनबन ज्यादा स्वाभाविक है। विज न सीधे–सीधे जीवनदर्शन नहीं है उसे सूत्रबद्ध कर सकें। उसका एक अन्तः स्वायत्व सर्जनात्मक बोध सर्जनात्मक के हत्केन्द्र जैसा कुछ है, जिसे परिभाषा में बंधना मुश्किल है। ट्रेजिक विजन और महान सर्जनात्मक का संगसाथ जाना पहचाना है पर विजय जीवन के प्रति एक कौतिक खैये, विनोद वृत्ति या खिलन्दड़ेपन के बावजूद संभव है। उपन्यास रूप की नई संभावना इधर इसी दूसरी धारा के उपन्यासों में देखी गई है। नौकर की कमीज खिलेगा तो देखेगें दीवार में एक खिड़की रहती थी जैसे विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास इस दृष्टि से उल्लेखनीय उदाहरण है।

विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास कई बार घटनाविहीन जान पड़ता है क्योंकि कुछ भी महान घटित नहीं हो रहा है। जो उल्लेखनीय हो, आर्थिक सामाजिक राजनीतिक, समाज का ठोस मापक हो। घटनाएं इस अर्थ में है ही नहीं। नौकर की कमीज में फिर भी कथा थी। खिलेगा तो देखेंगे में कथा तत्व क्षीण या नगण्य है, दीवार में एक खिड़की रहती थी, में एक तरह की कथा लय तो है पर कथा के सहारे वह नहीं है, दुर्लभ अज्ञात मर्मक्षणों के चलते हैं। अत्यंत साधारण में छिपा रहस्यमय जो एक सीधी रेखा नहीं बनता। यहां उपन्यास विनोद विक्रेता के शिल्पचतुर मुक्त पाठ में क्रमशः खुलता है। इन उपन्यासों का विजन एक अज्ञात मार्मिक क्षण हो सकता है। निर्व्यारण्य जीवन की आहट की तरह।

1979 ई. में विनोद कुमार शुक्ल (ज. 1937) का पहला उपन्यास नौकर की कमीज प्रकाशित हुए। विनोद कुमार शुक्ल निम्न मध्यवर्गीय जीवन के उपन्यासकार माने जा सकते है। नौकर की कमीज के केन्द्र में एक दफ्तर का परिवेश है, जिसमें कुछ बाबू, एक बड़ा अफसर और एक चपरासी है। विनोद कुमार शुक्ल ने दफ्तर की जिन्दगी–बाबुओं के दब्बूपन, बेचारगी, आपसी ईष्या–द्वेष, खुशामदी मनोवृत्ति, अफसर की नौकरशाही मानसिकता और दफ्तर के जड़, हास्यास्पद नियमों आदि का प्रामाणिक अंकन किया है।

बदी अज्जमों के एक चूहे की मौत के बाद दफ्तर की जिन्दगी के अंकन का यह दूसरा उल्लेखनीय प्रयास माना जा सकता है। इसके साथ ही केन्द्रीय पात्र–क्लर्क सन्तू बाबू के पारिवारिक जीवन का भी विश्वसनीय चित्रण उपन्यास में मिलता है। उपन्यासकार यह बताना चाहता है कि निम्न मध्यवर्गीय परिवार की नियति ही उच्च वर्ग द्वारा शोषित हो और उपयोग में लाये जाने की है। सन्तू बाबू यदि क्लर्क होने के नाते बड़े साहब के घरेलू कामकाज करने को बाध्य है तो उसकी पत्नी बड़े डाक्टर की किरायेदार होने के कारण चाय–नाश्ते पर उसके घर के कामकाज निपटाती है। उच्च पदों पर अवस्थित लोग जिस सम्य तरीके से अपने अधीनस्थ या मजबूर लोगों का शोषण करते है, उसका विनोद कुमार शुक्ल ने बहुत विश्वसनीय अंकन किया है। बड़े साहब से एक नौकर की कमीज बनवा रखी है, जिसकी नाप का नौकर ही आदर्श नौकर हो सकता है।

जब इस कमीज की नाप का नौकर नहीं मिलता तो सन्तू बाबू को ही यह कमीज जबरदस्ती पहना दी जाती है और मान लिया जाता है कि वे बड़े साहब के घर का कामकाज करने के लिये उपयुक्त व्यक्ति है। दफ्तर का चपरासी महँगू एक आदर्श चपरासी माना जाता है जो राम–राम साहब बोलते–बोलते अन्त में पागल हो जाता है और मंगल हो जाने पर राम–राम साहब ही बोलता रहता है। उसके

मरने के बाद उसका लड़का लड़की उसकी जगह लेता है तो उसका नाम भी महँगू ही रहता है।

इस तरह नौकर की कमीज में दफ्तर और बाबुओं के घर और बाहर की दयनीय विवश जिन्दगी तथा अफसरशाही की क्रूर, संवेदनहीन मानसिकता के चित्रण में उपन्यासकार ने अपने गहरे अनुभव और संवेदनशीलता का परिचय दिया है।

अंत में निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते है – विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास नौकर की कमीज ने पिछले वर्षो में आखिरकार अपना कालजयी दर्जा स्वीकृत करवा ही लिया।

I nHk xFk %&

अच्छी हिन्दी	–	रामचन्द्र शर्मा
उपन्यास का पुर्नजन्म	–	परमानंद श्रीवास्तव
पाश्चात्य साहित्य चिंतन	–	निर्मला जैन, कुसुम बांठिया
हिन्दी साहित्य का इतिहास	–	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
दीवार में एक खिड़की रहती थी	–	वाणी प्रकाशन–1992

International Journal of Social Science & Management Studies (Peer Reviewed & Refereed Research Journal) I.J.S.S.M.S.
& Impact factor - 3.9 Research Journal
ISSN : 2454 - 4655, Vol. - 4, No. – 12 Jan. 2019

पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

वर्षा कापसे
शोधार्थी, शिक्षा संकाय, बरकतुल्हा, विश्वविद्यालय भोपाल

प्रस्तुत अध्ययन में पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इसके लिए बीना में स्थित शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत पूर्व माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा 8 वी में अध्ययनरत 200 विद्यार्थियों का चयन किया गया। वार्षिक परीक्षा के प्राप्तांक मूल प्राप्तांक के रूप में लिए गये। प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए क्रांतिक अनुपात परीक्षण का प्रयोग किया गया। शोध परिणामों से सह ज्ञात हुआ कि पूर्व माध्यमिक स्तर के अशासकीय विद्यालयों के छात्रों/विद्यार्थियों से उच्च पायी गयी परंतु शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नही पाया गया।

मुख्य शब्द :– पूर्व माध्यमिक स्तर, शैक्षणिक उपलब्धि, शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय।

मानवजाती के विकास तथा प्रगति में शिक्षा की सर्वप्रमुख भूमिका है। शिक्षा समाज की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति का मुख्य आधार है। शिक्षा के अभाव में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिशीलता की कल्पना करना निरर्थक है। शिक्षा जीवन पर्यन्तचलने वाली समाज की प्राचीनतम घटना है जो शिशु के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त चलती रहती है। वर्तमान समय में शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित होते जा रहा है एवं वर्तमान में शिक्षा पाठ्यक्रम केन्द्रित होने के स्थान पर बालकेंद्रित हो गई है, परंतु वर्तमान में बालकों की व्यक्तिगत सफलताएं ही परिवार तथा विधालयों का मुख्य लक्ष्य बनती जा रही है। और इस सफलता में बालकों के सवार्गीण व्यक्तित्व विकास की उपेक्षा कर सिर्फ उसके बौद्धिक विकास पर या कहें तो उसके द्वारा परीक्षा में प्राप्त अंको को ही महत्व दिया जा रहा है। पंतु विछले कुछ समय में विभिन्न आयोगों, समितियों व राष्ट्रीय पाठचर्या की रूपरेखा में इस बात पर बहुत अधिक जोर दिया गया कि बच्चों के सवार्गीण विकास के सभी पक्षों पर ध्यान दिया जाए तथा विद्यार्थियों की उपलब्धियों का मापन करते समयस सिर्फ शैक्षणिक क्षेत्रों पर ही ध्यान नहीं दिया जाय अपितु गैर शैक्षणिक क्षेत्रों में भी उसके द्वारा प्राप्त की गई उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाए। फिर भी वर्तमान की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में शैक्षणिक उपलब्धि सबसे अधिक महत्व रखती है। वास्तव में स्कूलों में औपचारिक शिक्षा के दौरान शैक्षणिक उपलब्धि पर ही विशेष जोर दिया जाता है। अतः शोधकर्ता ने यह देखने का प्रयास किया है कि क्या विद्याथियों के विद्यालय प्रबंधन की प्रकृति शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करती है या नहीं। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधार्थी ने पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विधार्थियों की शौक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास इस अध्ययन द्वारा किया है।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध कार्य किये गये है जैसे :– **सारस्वत, अनिल (1988)** के परिणामों में यह स्पष्ट हुआ कि उत्तम वातावरण में विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि अधिक रहती है। **मुखोपाध्याय, दिलीप कुमार (1988)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि विद्यालयों में उपलब्ध भौतिक सुविधाओं का शैक्षणिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया जाता है। **दार्जिगपूई (1989)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि विद्यालय का प्रकार, विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि तथा विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति को बढाने में धनात्मक प्रभाव डालते है। **पाण्डेय, विष्णु प्रकाश (1989)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि सरस्वती विद्या मंदिर के विद्यार्थियों की गणित विषय में उपलब्धि, शासकीय एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों से सार्थक रूप से उच्च पाई गई जबकि कान्वेंट विद्यालयों के विद्यार्थियों के समान पाई गई। **प्रधान (1991)** ने अपने अध्ययन में पाया कि विद्यालयीन संस्थागत वातावरण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को सार्थक रूप से प्रभावित करता है। **फैलोज, अंजना (2011)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया गया कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के छात्रों की

शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा अशासकीय विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि, शासकीय विद्यालयों के छात्रों से उच्च पाई गई।

समस्या कथन :– पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयें में अध्ययनरत छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना :– पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयें में अध्ययनरत छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

उपकरण :– प्रस्तुत शोधकार्य हेतु शैक्षणिक उपलब्धि के मापन के लिए सत्र 2017–18 में म.प्र. राज्य शिक्षा केन्द्र भोपाल द्वारा आयोजित कक्षा 8 वी की वार्षिक परीक्षा के प्राप्तांक मूल प्राप्तांक के रूप में लिए गये है।

विधि :– सर्वप्रथम बीना शहर के म.प्र. माध्यमिक शिक्षा से संबद्ध माध्यमिक विद्यालयों की सूची प्राप्त की गई तथा इस सूची में से चार विद्यालयों का चयन किया गया (2 शासकीय विद्यालय एवं 2 अशासकीय विद्यालय) तथा इन विद्यालयों की कक्षा आठवी में सत्र 2017–18 में अध्ययनरत् 200 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा किया गया, जिसमें 100 विद्यार्थी शासकीय विद्यालयों में (50 छात्र एवं 50 छात्राएं) तथा 100 विद्यार्थी अशासकीय विद्यालयों के (50 छात्र एवं 50 छात्राएं) थे। इन विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मापन के लिए म.प्र. राज्यशिक्षा केन्द्र द्वारा आयोजित कक्षा 8 वीं की वार्षिक परीक्षा के प्राप्तांक मूल प्राप्तांक के रूप में लिये गये। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकडो का विश्लेषण किया गया एवं प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषण :–

तालिका

पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	विद्यालय का प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
छात्र	शासकीय	50	303.78	55.83	3.82	<0.01
	अशासकीय	50	344.20	49.73		
छात्रा	शासकीय	50	337.16	61.39	1.95	<0.05
	अशासकीय	50	359.64	53.45		
विद्यार्थी	शासकीय	100	320.47	59.37	3.96	<0.01
	अशासकीय	100	351.92	52.69		

स्वतंत्रता के अंश 98, 198 0.05, 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान – 1.98, 2.63, 2.60

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है क्योंकि इन दोनो समूहों के लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 3.82, 3.96 स्वतंत्रता के अंश 98 व 198 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिए न्यूनतम निर्धारित मान क्रमशः 2.63 व 2.60 से अधिक है।

जबकि छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है। क्योंकि इनके लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का नाम 1.95 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए न्यूनतम निर्धारित मान 1.98 से कम है।

अतः उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों से उच्च पाई गई जबकि छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

निष्कर्ष :– पूर्व माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों से उच्च पाई गई जबकि छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

International Journal of Social Science & Management Studies (Peer Reviewed & Refereed Research Journal) I.J.S.S.M.S.
& Impact factor - 3.9 Research Journal
ISSN : 2454 - 4655, Vol. - 4, No. – 12 Jan. 2019

ckt kjokn dk ukjh psruk ij iHkko

राकेश कुशवाहा
हिन्दी विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

आधुनिक काल की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं में एक प्रमुख है, भारतीय नारी की जाग्रति। 20वीं सदी के मध्य तक आते–आते नारी की दशा और दिशा पर गहन चिंतन आरंभ हुआ। उत्तर सती की भारतीय नारी न केवल स्वयं जागरूक हुई उसके प्रति समाज की दृष्टि भी बदली और सरकारों ने कानूनों का आसरा लेकर, न्यायापालिका ने पर्याप्त हस्तक्षेप करके उसके हितों का संरक्षित किया। इन समवेत प्रयासों से आज राजनीति के सवोच्च शिखर पर विराजमान है। भारत की सशक्त प्रधानमंत्री के रूप में श्रीमति इंदिरा गांधी बनकर विराजी लोकसभा की प्रथम अध्यक्ष श्रीमति मीरा कुमार, वर्तमान अध्यक्ष श्रीमति सुमित्रा देवी महाजन लोकसभा में पूर्व नेता प्रतिपक्ष श्रीमति सुषमा स्वराज, राज्यसभा की पूर्व उपसभापति श्रीमति नजमा हेपतुल्ला, यू.पी.ए. की अध्यक्ष श्रीमति सोनिया गांधी वर्तमान में अनेक राज्यों की मुख्यमंत्री, अनेक राज्यों की राज्यपाल सर्वोच्चतम न्यायालय की न्यायाधीश अनेक राज्यों के न्यायालयों की प्रधान न्यायाधीश, न्यायाधीश, आई.ए.एस. आई.पी.एस. आदि विविध पदों पर विराजी है। बछेन्द्री पाल के रूप में यह हिमालय के सर्वोच्च शिखर तक पहुंची तो ट्रक चलाने से लेकर हवाई जहाज उड़ाने की स्पर्धा में भी वह आगे आई। कक्षाओं से कछारों तक, मेहनतकश मजदूरी से उद्योग संचालन तक नारी कहां नहीं है ?

इस उज्जवल पक्ष के बाद भारतीय नारी की प्रगति आज भी संतोषप्रद हो सकती है, गर्वप्रद नहीं। जून 2000 ई. में विश्व मानव विकास की रिपोर्ट के अनुसार 174 देशों में नारी की स्थिति के मामले में भारत 128 वे स्थान पर है। 21वीं सदी के प्रारंभ की नारी का रूप थोड़ा और निखरा है।

स्वाधीन नारी की छटपटाहट और संघर्षों को लेखिकाओं ने अपनी–अपनी दृष्टि से विवेचित किया है। बदलाव को समझा और महसूस किया है। सामाजिक भूमिका में आज की नारी पुरूष के हाथों का खिलौना बनकर रहने को तैयार नहीं। सामाजिक असमानता और दोहरे मानदण्डों से दुखी नारी मन में असंतोष भर गया। फलतः नारी लेखन नारी की दुनिया को बेहतर ढंग से देखने, जानने और बेहतर बनाने की दिशा में सक्रिय हुआ। नारी लेखन में शोषण का विरोध और न्याय की पक्षधरता के दोनों तत्व दिखाई देते हैं। आज का नारी लेखन सामाजिक प्रथाओं की रूढ़ियों में पिसती नारी की चिंता भी करता है और नारी स्वतंत्रता की दिशा में सामाजिक चिंता से सरावोर भी है। मृदुला गर्ग लिखती है ''हर सफल पुरूष अवश्य रहता है जिसके कारण नहीं, जिसके बावजूद, वह लेखन करती है। यह पुरूष उसकी प्रेरक शक्ति भले न हो उत्तेजक शक्ति तो अवश्य है। आज की नारियां सामाजिकलशील के नाम पर कोई छदम नहीं पालना चाहती है। पुष्पा भारती इस बात को बड़े तीखें स्वरों में कहती है – ''नारी के पास जड़ से न उखड़ने के कारण अधिक सामाजिक अनुभव है। वह पुरूष की भांति साहित्यक आडम्बरों का जीवन जीने का दम्भ नहीं भरती। आजाद भारत की नारी को जो कुछ कहना या करना है उसमें उस साहस का संचार हो गया है कि वह कह या कर सके। इसी दिन की प्रतीक्षा जागरूक महिलाएं कर रही थी भारतीय नारी जिस दिन अपने संपूर्ण प्राण प्रवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं। उसके अधिकारों के संबंध में यह सच है कि भिक्षावृति से न मिले है, न मिलेंगे, क्योंकि उनकि स्थिति आदान–प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न है। समाज में व्यक्ति का सहयोग और विकास की दिशा में उसका उपयोग ही उसके अधिकारों, हमारी शक्ति और विवेक के सापेक्ष रहेंगे। अतः अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए। सामान्यतः भारतीय नारी से इसी विशेषता का अभाव मिलेगा। वहीं उसमें साधारण दयनीयता है और वहीं असाधारण विद्रोह है, परंतु संतुलन से उसका जीवन परिचित नहीं। नारी ने अपने असीम धैर्य के बल पर सारी परिस्थितियों से तालमेल बिठाया और अपने साहस से प्रतिकूलताओं का सामना किया। फलतः आज उसकी स्थिति में अनेक परिवर्तन आए है। इन परिवर्तनों को हम निम्न प्रकार से भलीभांति स्पष्ट कर सकते हैं –

ijiijkxr Hkkjrh; ukjh & समाज वेत्ता मनु जब यह घोषणा करते हैं ''यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता तो वे एक साथ नारी के प्रति दृष्टिकोण और नारी की सत्ता की महत्ता दोनों को उद्घाटित करते रहते हैं। मनु की उद्घोषणा भारतीय नारी के गौरव का गान है।

विधाता की अनुपम कृति के रूप में नारी को सृष्टि का मूल माना गया जिसके अभाव में मनुष्य के अस्तित्व की कल्पना असंभव है। नर के कठोर पुरूषार्थ के अंतस्तल में शीतल तृप्तिकर अमृत सरिता सी नारी उसके जीवन को संपूर्णता देती रही है। जननी, माता से लेकर प्रिया–पुत्री, सहचरी आदि कितनी भूमिकाओं को निभाते नारी सदा–सर्वदा मानव की जिज्ञासा का विषय रही है। दार्शनिकों ने अनन्त जीवन की नित्य चैतन्य ज्योति रूप में उसे प्रतिष्ठा दी तो कला साधकों ने सृष्टिकत्ता के विश्राम के क्षणों में छोड़े गए उच्चवास में समस्त सौंदर्य के अनुपम विधान की संज्ञा दी। नारी, स्त्री, रमणी, वामा, महिला आदि जाने कितने नामाअलंकरणों से उसे विभूषित किया गया। सौम्य रूप में जगतहारिणी, भव भय हारिणी आदि कहा गया तो अतृप्ता काम के कुटिल ब्याल में विषकन्या की संज्ञा भी दी गई। वस्तुतः पुरूष के अभ्यांतर में छिपे संपूर्ण कल्याण की प्रकाशिका भी नारी है। उसी दिव्यता के कारण उसे देवी कहा गया।

ukjh dh lRrk vkj egRrk & पाश्चात्य चिंतन धारा नारी के काम्या किंवा भोग्या रूप की ही आराधिका रही है। यद्यपि अच्छे आचरण के लिए भी उसे उत्तरदायी माना गया। फेटे जब यह कहता है – ''सोसायटी ऑफ वुमेन इज फाउन्डेशन ऑफ गुड मेनर्स'' तो स्पष्ट हो जाता है कि संपूर्ण समाज की श्रेष्ठता का आधारभूत नारी ही है। लावेल तो इससे भी आगे बढ़ जाते है और उद्घोषण कर देते है – ''अर्थ नॉबलेस्ट थिन इज ए वुमेन परफेक्ट'' अर्थात न केवल समाज वह संपूर्ण पृथ्वी की उत्तमता का कारक उत्तम नारी को मानते हैं। आश्चर्य होता है ऐसी दिव्य चिंतना के बाद भी पाश्चात्य नारी भले ही पुरूष की बराबरी में शक्ति संपन्न बनकर खड़ी हो किंतु भारतीय नारी की तरह उसका रूप उतना भास्वर नहीं हो सका। अधिकारवाद की स्पृहा ने उसे पुरूष की नकल करने वाली तो बना डाला किंतु वह भूल गई कि वह पुरूष की प्रतिकृति नहीं उसकी प्रेरणा शक्ति है।

vkfFkd vkRe&fuHkjrk d ifr :>ku & नारी केवल रमणी या भार्या नहीं रहीं वरन घर के बाहर समाज का एक विशेष अंग तथा महत्वपूर्ण नागरिक बनकर प्रस्तुत हुई है। बदली हुई परिस्थितियों तथा मनः स्थितियों में नारी के आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश का अध्ययन करते हैं तो हम पाते हैं कि नारी नौकरी करती हुई आर्थिक निर्भरता में संतोष प्राप्त करने में एक सीमा तक सफल हुई है। उसके आर्थिक आत्म–निर्भरता के प्रति रूझान का एक कारण यह भी कहा जा सकता है कि खालीपन को काटने तथा विवाह तक नौकरी करते रहने की मजबूरी भी। दहेज की रकम इकट्ठी होने तक नौकरी करना भी एक कारण है। 'कर्क रेखा' की तनु अभावों के कारण नौकरी करके मां को राहत पहुंचाना चाहती है। खाली समय में ट्यूशन करती है। मां कहती है – 'दो चार साल नौकरी कर लो तो शादी के लिए कुछ रूपया आ जाये। तुम्हारें बाप ने तो कुछ जमा बचा जोड़कर रखा है नहीं। आर्थिक क्षेत्र में नारी के आने से उसकी जिम्मेदारियां और अधिक बड़ जाती है। घर के लोग काम करते है मगर व्यवहार कुछ ऐसा करते हैं मानो उस कामकाजी नारी पर कुछ अहसान कर रहे हो। 'उन शाखों पर' उपन्यास की पात्रा मीरा सकूल अध्यापिका है, वह दिनभर थककर आती है, आते ही घर वालों के नखरे उठाने पड़ते हैं। वह कहती है – ''भाई दिन भर यहां खटकर जाऊँ तो उन्हें बस नखरे सूझते है। बहू सबेरे ही तुम जल्दी चली जाती हो। इस वक्त यह कर लो, वह कर लो बड़बड़ाती रहेगी सो अलग। मुझे भी पुराने जमाने की वहीं दब्बू औरत समझ रही है। उनकी धौंस सहेगी, मेरी जूती, अपना कमा रही हूं, किसी के आसरे नहीं बैठी हूं।

आर्थिक, आत्म निर्भरता के कारण अविवाहित नारी अपनी सारी इच्छाओं, आकांक्षाओं को मारकर पारिवारिक समस्याओं में उलझकर रह जाती है। बदलते संदर्भों में बहन जैसे रिश्ते औपचारिक बनते जा रहे है। विवाह के पूर्व ये संबंध सहज और अनौपचारिक होते हैं। छोटे भाई बहिनों को अकेले पैरों पर खड़ा होने का निर्वाह अविवाहिता बहन को करना पड़ता है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा भी नील के वैवाहिक प्रस्तावों को मात्र घर की जिम्मेदारियों के कारण नकारती रहती है – ''पहली बात तो नील यह है कि मेरी बहुत जिम्मेदारियां हैं'' तुमसे कुछ भी छिपा नहीं है।

1. पिता या पालक परिवार की आर्थिक विपन्नता।

2. दहेज की व्यवस्था के लिए रकम संचिति।
3. खाली समय व्यतीत करना।
4. अर्जित शिक्षा का सदुपयोग।
5. ससुराल पक्ष की आकांक्षा।
6. नौकरी पेश पति द्वारा, नौकरी पेशा पत्नि की चाहत।
7. आर्थिक आत्म–निर्भरता की आकांक्षा।
8. आत्म–सम्मान और जीवन जीने की चाह।
9. भविष्य की सुरक्षा।
10. समाज में घट रहे घटनाक्रम को देखकर उद्भूत भय।

आदि कारणों से नारी आर्थिक आत्म–निर्भरता की ओर कदम बढ़ा रही है। उसके इन कदमों से समाज में उसे एक पृथक पहचान प्राप्त हुई है। महिला रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में नारी आत्म–निर्भरता की प्रमुखता से स्थान दिया है यही कारण है कि प्रायः सभी प्रमुख महिला रचनाकारों के उपन्यासों की नारी पात्र चाहे वह शहरी हो या ग्रामीण निठल्ली नहीं बैठती कुछ न कुछ उर्पाजन करती दिखाई देती है। शहरी मध्यम, निम्न मध्यम और कहीं उच्च मध्यम वर्गी नारियां प्रायः नौकरी पेशा ही है। इससे होना प्रतीत होता है कि नारी के आर्थिक आत्म–निर्भरता महिला रचनाकारों का प्रिय विषय रहा है।

lrh iFkk dk lekiu dh lgefr & सामाजिक विकास क्रम में भारतीय समाज ने प्रचलित अनेक प्रथाओं और मान्यताओं में अपने–आपकों मुक्त किया है जिनमें सतीप्रथा भी एक है। समाज चिंतकों में इस प्रकार की भयावह को लक्ष्यकर इसके प्रति सामाजिक चेतना के प्रसार का कार्य किया, प्रशासन ने कानून बनाकर इसके नियंत्रण का मार्ग सुझाया किंतु सबसे अहम भूमिका नारी ने ही निभाई, जिसने इस प्रथा के विरोध को अपनी सहमति प्रदान की। एक समय था जब पति के मृत शरीर के साथ नारी के जीवित अग्नि स्नान द्वारा चिता पर भस्मीभूत हो जाने को सती कहकर महिमा मण्डित किया जाता था। ऐसी नारी की जय–जयकार होती थी, उसकी चिता पर मेले लगते थे और उसके मंदिर बनाये जाते थे। सामाजिक जागरूकता और कानूनी दबाव से इस प्रथा का नियमन आरंभ हुआ तो नारी पति विक्षोभ पर पलायन कर जीवन के समापन पर विश्वास नहीं रखती वरन जीवन संघर्षों में कूदकर कठिनाइयों से दो–दो हाथ करने की उद्यत होती है। यह उसकी शक्ति का प्रमाण है तो उसकी जागरूकता भी प्रदर्शित करता है। नारी के साहस ने जहां उसे अनेक समस्याओं से मुक्ति दिलाई है वहां उनके आत्म–विश्वास में भी वृद्धि की है।

ukjh pruk d fofo/k mTtoy i{k & स्वाधीन भारत की नारी समाज में अपनी उपस्थिति का एहसास कराती तेजी से प्रगति सोपानों की ओर बढ़ रही है। उसकी प्रगति यात्रा हर्ष एवं गर्व का विषय है। अब वह मध्यकाल की दबी, कुचली, पिसी हुई नारी नहीं रही न हालावाद की कमनीय काया का कंचन परोसती कामोत्तेजक पुत्तलिका बनकर रहने को तैयार है न बड़े घर की बेटी की भूमिका निभाती सलज्ज कुल वधु की अवगुंठन वाली नारी का भाव उसे प्रिय है न ही सती के गौरवमान में मण्डित हो पति की चिंता में प्राणोत्सर्ग करने वाली अथवा देवी स्वरूपा श्रद्धामयी रूप के प्रति ही उसकी आस्थाएं टिकती है, वरन अपने समय और समाज तथा परिवेश की सच्चाईयों से रूबरू होती उनमें संघर्ष करती दो–दो हाथ करती दृष्टिगोचर होती है। जीवन के हर क्षेत्र में उसने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है।

lnHk xFk lph %&

1. उमा शुक्ल, भारतीय नारी अस्मिता की पहचान, पृ. 65।
2. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियां, पृ. 41।
3. डॉ. हरिशंकर दुबे : महिला उपन्यासकारों की नारी प्रगति एवं पीड़ा के आयाम, पृ. 12।
4. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस, किष्किंधा काण्ड – 10–4।
5. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस, अयोध्याकाण्ड – 101/3
6. डॉ. निर्मला जैन, आधुनिक हिंदी उपन्यास, पृ. 284।
7. डॉ. हेमन्तकुमार पानेरी, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास मूल्य संक्रमण, पृ. 74।
8. डॉ. रेणुका मोरे, नारी विमर्श की नयी दिशाएं, पृ. 61।
9. मलती परवलकर, जहां पौ फटने वाली है, पृ. 47।
10. डॉ. कल्पना किरण पाटोले, महिला उपन्यास पारिवारिक जीवन के बदलते संदर्भ, पृ. 145।
11. महेन्द्र कुमार जैन, हिंदी उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण, पृ. 216।
12. प्रतिभा वर्मा, उन शाखों पर, पृ. 69।

International Journal of Social Science & Management Studies (Peer Reviewed & Refereed Research Journal) I.J.S.S.M.S.
& Impact factor - 3.9 Research Journal
ISSN : 2454 - 4655, Vol. - 4, No. – 12 Jan. 2019

गोड़ जनजातियों के जीवन स्तर पर प्रभाव

छत्तर सिंह लोधी
शोध छात्र – रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

गोड़ जनजातियों के जीवन स्तर पर प्रभाव – गिरिजनों के कल्याणार्थ शासन ने व्यापक कार्यक्रम सुनिश्चित किए हैं। जिनका उल्लेख मैनें पूर्व में किया है। इन योजनाओं ने आदिवासियों की जीवन स्तर को श्रेष्ठ बनाने की दिशा में अभिनव शुरुआत की है। हालाकि कल्याण कार्यक्रमों का क्रियान्वय बाल्य काल से गुजर रहा है। किंतु प्रयासों की सार्थकता को नकारा नहीं जा सकता है।

अंत्योदय सहकारी विकास निगम द्वारा चलाए जा रहे कल्याण कार्यक्रमों ने गिरिजनों के जीवन में नकारात्मक परिवर्तन कि पहलुओं को स्पर्श किया है। एक विवेचन इस प्रकार है–

रफ्तार योजना के अंतर्गत ट्रक, मिनी बस, जीप टैक्सी, आदि के लिए आसान ऋण प्रदान किया जा रहा है। जिससे ये लोग अपने परिवार के लिए उदरपालन में सहयोगी सिद्ध हो रहे है। वर्ष 1991–92 में 200 लोगों को इसका लाभ दिया जा चुका है।

सहकारी योजना ने आदिवासियों की विशिष्ट निर्माण क्षमता के स्वत्व रक्षा में सहयोग दिया है अब वे किसी के लिए नही अपितु अपने स्वंय के लिए ईंट भट्टें एवं क्रेशर लगाएगें। वर्ष 1991–92 में 534 लोगों को इस योजना का लाभ मिला।

जल जीवन योजना ने आदिवासी किसानों की अतृप्त प्यास को शांत करने का मार्ग प्रशस्त किया है। सामूहिक रुप से सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराने एवं व्यक्गित रुप से पम्प सैट प्रदान करने के लिए समुचित ऋण व्यवस्था की गई है। 1991–92 में 2000 आदिवासी कृषकों को इस योजना का लाभ मिला।

सवालम्बन ने गरीब गिरिजनों के लिए दुकान रोड या गुमटिया स्थापित कर अपना व्यवसाय करना आसान कर दिया है। आदिवासियों को फोटो कापी, एस. टी. डी, पीसीओ इत्यादि के लिए ऋण सुलभ कराया जा रहा है। 1667 हितग्राहियों ने वर्ष 1991–92 में लाभ प्राप्त किया है।

मधुबन योजना से आदिवासियों के परम्परागत पेशे दुधारु पशुपालन में सहयोग मिला है। अब सामूहिक रुप में इस व्यवसाय के लिए ऋण सुविधा उपलब्ध करयी जा रही है। अभी वर्ष 1991–92 में 107 हित समूह लाभान्वित हुए है।

निर्मित ने डिग्री एंव डिप्लोमा धारी सिविल इंजीनियर आदिम जातियों के युवकों को नई राह दिखाई है। ऐसी प्रतिभाओं को अब ठेका अनुबंध करने के लिए कार्यशील वित्त उपलब्ध कराया जा रहा है जिससे तकनीकि बेकारी से इन्हें मुक्ति मिलेगी। 300 लोगों को इस योजना ने 1991–92 में लाभ दिया है।

धनवन्तरी योजना से स्नातक परीक्षा पास डाक्टरों को निजी प्रेक्टिस के लिए ऋण प्रदान किया जा रहा है। इससे सुदूर ग्रामीण अंचलों तक हम चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने में सफल होंगे इसी प्रकार न्याय निकेतन योजना के अंतर्गत आदिवासी अधिवक्ताओं को स्वतंत्र प्रेक्टिस के लिए भवन निर्माण किया जा रहा है।

न्वजीवन कार्यक्रम शहरी आवासहीन असंगठित मजदूरों को भूखण्ड उपलब्ध कराया जा रहा है जिसके परिणाम स्वरुप क्षेत्रों में इन गिरिजनों को स्थापित करने में सहायता मिल रही है। वर्ष 1991–92 में 667 लोगों को इसका लाभ मिला।

शासन ने कुष्ठ रोगियों, विकलांगों, निराश्रितों, विधवा परित्यक्ता महिलाओं को एक नई राह दिखाई है। बहुत से छोटे छोटे व्यापार के लिए आवश्यक ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है। जिससे यह लोग जीवन के प्रति एक बार पुनः आशान्वित होने लगे है। ऐसे गिरिजनों जो कृषि कार्य जानते हैं किंतु भूमि विहीन है, उन्हें उनकी भूमि मुहैया कराने के लिए वसुन्धरा कार्यक्रम के अंतर्गत अन्य कृषकों से भूमि क्रय कर उपलब्ध करायी जा रही हैं।

1991–92 में 667 हितग्राही लाभान्वित हुए हैं।

पुस्तक बैंक योजना का सामाजिक प्रभाव – देश में अनुसूचित जाति व जनजाति के छात्रों को मेडिकल और इंजिनियरिंग महाविद्यालयों में अध्ययन करने के लिए पुस्तक बैंक की स्थापना हेतु केन्द्र सरकार व राज्य सरकार की सहायता से पुस्तक बैंक योजना चलाई जा रही है। योजना के अंतर्गत केन्द्र सरकार व राज्य सरकार द्वारा 50–50 प्रतिशत की सहायता दी जा रही है। जिसमें तीन छात्रों के समूह को 5000 रु. मूल्य की पाठ्य पुस्तकों का एक सेट अध्ययन के लिए दिया जाता हैं। जिसकी अवधि 3 वर्ष निर्धारित की गयी हैं। इसी प्रकार निः शुल्क पुस्तक प्रदाय योजना के अंतर्गत पहली एवं दूसरी कक्षा के अनुसूचित जातियों/जनजातियों के विद्यार्थियों एवं मेडिकल एवं इंजिनियरिंग महाविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्र/छात्राओं हेतु शासन अब तक लगभग 41 लाख रुपये व्यय कर चुकी हैं।

पुस्तक बैंक योजना के अंतर्गत अनुसूचित जाति व जनजाति के छात्रों को मेडीकल और इंजिनियरिंग महाविद्यालयों में अध्ययन के लिए पुस्तकें उपलब्ध करायी जाती है। इससे अनुसूचित जाति व जनजाति के छात्रों को भी तकनीकि शिक्षा व चिकित्सा शिक्षा प्राप्त करने के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त हो जाते है। और वे शहरी जीवन के आधार अपना जीवन व्यतीत करना सीख जाते हैं। उन्हें भी सामाजिक न्याय मिलना प्रांरभ हो जाता है।

प्रशिक्षण योजना का प्रभाव – केन्द्र सरकार द्वारा सर्वप्रथम 1959 में इलाहाबाद में आदिवासी क्षेंत्रों के पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र का शुभारम्भ किया जिसके अंतर्गत विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओं के लिए 15,450 उम्मीदवारों को परीक्षा पूर्व सहायता प्रशिक्षण दिया गया। जिससे केन्द्रीय व राज्य सेवाओं में आदिवासियों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया है और सभ्य समाज से उन का संपर्क निरन्तर बढ़ता जा रहा है। आदिवासियों का सर्वांगीण विकास
होता जा रहा है।

केन्द्रीय अनुसंधान का सामाजिक प्रभाव – केन्द्र सरकार द्वारा आदिवासियों के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए कल्याणकारी कार्यक्रमों का प्रारम्भ किया जा रहा है। इन कार्यक्रमों से पूर्व निर्धारित योजनाओं के सही ढंग से लागू किया जा रहा हैं। और समाज के कर्मचारियों से आदिवासियों का सम्पर्क सघन हो गया है अब वे भी पुरानी रुढ़िवादियों से निकलकर सभ्य समाज के तरीकों को अपनाने के लिए जागरुक हो रहें है।

आदिवासी बालिकाओं के लिए शिक्षा एवं छात्रावास योजना का प्रभाव – मध्यप्रदेश सरकार के द्वारा आदिवासी बालिकाओं में शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए शिक्षा योजना एवं अनुसूचित जाति व जनजाति लड़कियों के लिए छात्रावास योजना का संचालन किया जा रहा है। शिक्षा योजना के अंतर्गत आदिवासी बालिकाओं को शिक्षा के प्रति आकर्षित करने के साथ साथ उन्हें आवश्यक धनराशि भी प्रदान की जाती है, साथ ही अनुसूचित जाति व जनजाति की लड़कियों के लिए छात्रावास की सुविधा भी प्रदान की गई है ताकि घर से दूर रहकर भी ये छात्रांए विभिन्न स्तरों पर अपना अध्यापन कर सकें।

सामाजिक प्रभाव – समाज के उत्थान व विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। अभी भी हमारे समाज में शिक्षित वर्ग की संख्या बहुत कम है जिसमें महिलाओं का प्रतिशत और भी कम है। सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयासों के फलस्वरुप महिलाओं में शिक्षा का प्रचार बढ़ा है। छात्राओं के लिए छात्रावास की सुविधा ने शिक्षा अर्जन के लिए समुचित रास्तें खोलें
है। बालिकाओं के शिक्षित होने से जहां उनमें आत्मविश्वास का उदय होता है वहीं समाज भी प्रगति के पथ पर बढ़ता है। सरकार का यह प्रयास सराहनीय है परन्तु इसे अभी और विस्तृत करने की आवश्यकता आपेक्षित है।

अनुसूचित जन जातियों के जीवन स्तर पर ऋण मुक्ति एवं कानूनी सहायता योजना का प्रभाव – आदिवासियों के राज्य ासन के द्वारा उनके कल्याण हेतु अनेक कार्यक्रम चलाये गये है इनमें से एक ऋण मुक्ति एवं कानूनी सहायता है इस योजान द्वारा आदिवासियों की हड़पी जमीन साहूकारों एवं जमीदारों से वापस कराना तथा उन्हें ऋण से मुक्ति दिलाना है। इस योजना के माध्यम से 5 एकड़ तक के आदिवासी भूस्वामी के ऋणों को माफ कर दिया गया एवं आदिवासियों को अपने न्याय हेतू कानूनी सहायता भी उपलब्ध करायी गयी आदिवासी जो

साहूकारों के ऋणों से दबे थे मुक्त हो गये अब वे अपनी जमीन, मकान, या जेवर गिरवी नहीं रखना पड़ता उनके जीवन स्तर में धीरे धीरे सुधार हो रहा है।

आदिवासियों के जीवन स्तर पर नागरिक अधिकार संरक्षण (प्रकोष्ठ) का प्रभाव – आदिवासियों पर हो रहें अत्याचार, अपराध एवं उनके छुआछुत का व्यवहार व्याप्त है। ऐसी स्थिति में उनका आर्थिक एवं सामाजिक विकास नहीं हो पा रहा है। इनका विकास एवं उन्हें पूरा अधिकार दिलाने हेतू म.प्र. सरकार ने सिविल अधिकार सरंक्षण अधिनियम 1955 में प्रदेश में लागू किया। इस अधिनियम के द्वारा एक प्रकोष्ठ की स्थापना की 1979 में की गई इस प्रकोष्ठ में एक वरिष्ठ आई. ए. एस. अधिकारी तथा एक आई. पी. एस. अधिकारी की नियुक्ति की गई है। ये अधिकारी छुआछूत के मामलों को विशेष ध्यान रखेंगें और आदिवासियों को सार्वजनिक स्थानों पर प्रवेश दिलायेंगें। इस प्रको ठ माध्य से आदिवासियों पर होने वाले अत्याचार एवं छुआछूत में कमी आई है। अब ये सार्वजनिक स्थानों पर आ जा सकते है। अब इनके ऊपर किसी प्रकार का कानूनी बंधन नहीं है। अब इनके सामाजिक शोषण में कमी आई है। छुआछूत जैसी कुप्रथाए समाप्त हो गयी है।

वृक्ष सहकारिता योजना का प्रभाव – आदिवासियों का जीवन वनों के ऊपर ही निर्भर था, वनों से ये जड़ी बूटीयां अनेक वनोपज एवं जलाऊ लकड़ियां इत्यादि प्राप्त करके अपना जीवकोपार्जन करते आये हैं जलाऊ लकड़ी की पूर्ति जंगलों की अवैध कटाई से चली आ रही है। इसी कारण पर्यावरण भी प्रदूषित हो रहा है। शासन के द्वारा पुरानें जंगलों से होने वाली अवैध कटाई की रोक पर विशेष कदम उठायें गयें है। एवं शासन के द्वारा यह भी निर्णय लिया गया है कि इस विषैले प्रदूषण को स्वच्छ कराने के लिये वृक्ष सहकारिता जैसी नवीन योजना के तहत पुनः पर्याप्त मात्रा में वृक्षारोपण कराया जाए। इस प्रकार के वृक्षारोपण के लिये सरकार के द्वारा अनुदान राशि देने का प्रावधान भी रखा गया है। इस योजना का प्रभाव आदिवासियों की जीवन यापन पर विशेष रुप से लागू होगा क्योंकि वनों से अवैध कटाई न होगी। बल्कि उन्हें वृक्षारोपण के द्वारा रोजगार एवं अन्य प्रकार के वनोपज के माध्यम से उदर–पोषण का साधन सुलभ होगा। इससे उनके आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन हो रहा है।

गरीब महिलाओं का पंचधारा का प्रभाव – महिला वर्ग को जहां एक ओर उच्च स्तर से जोड़ा जाता है वहीं पर अगर उनकी वास्तविक छान–बीन की जाए तो अत्यंत ही दयनीय स्थिति सामने प्रकट होती है। इनमें विशेषतः आदिम जाति एवं जनजाति की महिलाओं की स्थिति और ही दयनीय देखने को मिलती है। राज्य शासन के द्वारा महिला वर्ग के उत्थान के हितार्थ ही पंचधारा जैसी महत्वपूर्ण योजना को लागू किया गया है ताकि महिला वर्ग के अंतर्गत विशेष रुप से अशिक्षित वर्ग की अप्रत्यक्ष रुप से ग्रहण की जाने वाली दास्ता से अपने आप को स्वतंत्र करा सकें। इन्हीं पतन के कारणों से उभरने के लिये शासन ने पंचधारा जैसे योजना के अंतर्गत पांच मुख्य बातें विशेष रुप से जोड़ी है।

निष्कर्ष :– स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनुसूचित जाति एवं गोड़ जनजाति के विकास हेतु राज्य शासन द्वारा अनेक प्रयास किये गये हैं उन्हें सरकारी सेवाओं में आरक्षण, गरीबी, बेकारी, बुढ़ापा बेरोजगारी अशिक्षा, स्वाथ्य आदि अनेक समस्याओं को मध्य नजर रखते हुये इनको विकास की मुख्य धारा से जोड़ा गया हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर अब तक गोड़ जनजाति की समस्याओं के समाधान, हेतु राज्य शासन ने भरसक प्रयास किये है। जिससे उनके विकास दर में वृद्धि हुई है। राज्यशासन द्वारा समय–समय पर क्या–क्या सहायता प्राप्त हुई है और इन लोगों ने उसका लाभ कहां तक प्राप्त किया हैं इन्हीं तत्सामयिक संदर्भो को सामने रखते हुये निष्कर्ष निकालकर कुछ सुझाव भी प्रस्तुत किये है।

यह सत्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 67 वर्षो में हमने इनके विभिन्न क्षेत्रों में उंचाईयां छूने का प्रयास किया है। राज्य शासन ने यही प्रयास किया हैं कि गोड़ जनजाति के लोंग, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक रूप से जाग्रत हो सके और राज्य शासन की योजनाओं का लाभ उठा सकें।

मेंने इस शोध कार्य में उनके अन्दर राजनीतिक चेतना जाग्रत कर विकास की ओर बढ़ने के लिये प्रयास किये है। में गोड़ जनजाति के लोगों को राजशासन की योजनाओं का लाभ दिलाकर अन्य वर्गो की भॉति उन्हें भी विकास के क्रम जोड़ना चाहता हूँ।

ताकि वे अन्य वर्गो की भॉति राज्यशासन की नीतियों को अंगीकार कर कदम से कदम मिलाकर आपना योगदान दे सकें।

गोड़ जनजाति के लोगों के विकास में सबसे बड़ा अवरोध अशिक्षा, अज्ञानता, बेकारी, गरीबी, और छुआछूत हैं में इन्हें समान दर्जा दिलाना चाहता हूँ। संविधान में सभी जाति धर्म के लिये समानता हैं तो फिर इन जातियों के बीच भी असमानता दूर होना चाहियें। तब ही डॉ.बी.आर आम्बेड़कर का स्वप्न साकार होगा तब ही हम सच्चे लोकतंत्रवादी कहलायेंगे। अपने शोध कार्य के दौरान यह पाया कि राज्यशासन ने अनुसूचित जनजाति के लोगों को छात्रवृत्ति देकर, शिक्षा के विकास में अपना योगदान दिया है। तब ही इस गोड़ जनजाति के लोग सभी क्षेत्रों में सेवायें दे रहे है। राज्य शासन के प्रयास से छुआछूत, गरीबी, बेकारी, की समस्यॉ का समाधान खोजा गया है कृशकों को भी सहायता दी जाती है। वृद्धों को पेंशन, महिलाओं के विकास हेतु कृत संकल्पित सरकार ने हर क्षेत्र में विकास के प्रतिमानों को छूने का प्रयास किया है। इसलियें मैंने यह निष्कर्ष निकला हैं कि राज्य शासन ने गोड़ जनजाति की सहायता के लिये भरपूर प्रयास किये हैं तब ही, अब आदिवासी समाज विकास की ओर क्रमशः दिनोदिन बढ़ रहें है। मेरे द्वारा दिये गये प्रमुख सुझाव इस प्रकार है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. तिवारी शिव कुमार – मध्यप्रदेश के आदिवासी, प्रकाशक मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल सन् 2000 पृ. 2–29
2. मजूमदार डी.एन –**रेसेज एंड कल्चर्स ऑड इंडिया** – 1921 पृ. 367
3. सिन्हा सचिन – भारतीय प्रशासनिक सेवा निदेशक जनगणना काय ंनिदेशालय मध्यप्रदेश, भारत जनगणना 2011 पृ.204
4. उप्रेती हरिश्चन्द्र – **भारतीय जनजातियां संख्या एवं विकास**,राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, 2002 पृ. 07–22
5. अटल योगेश– **आदिवासी भारत**, 1965 पृ. 17
6. मजूमदार डी.एन तथा मदन **इंट्रोडक्शन टु सोश्यल एंथ्रोपोलॉजी,** 1957, पृ. 267–268
7. तिवारी डॉ. शिवकुमार, शर्मा डॉ. श्रीकमल – मध्यप्रदेश की जनजातियां हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,सन् 1994 पृ.72–106
8. अग्रवाल रामभरोस– गोंड़ जाति का सामाजिक अध्ययन, प्रकाशक गोंड़ी पाब्लिक ट्रस्ट, मण्डला सन् 2005, पृ 583–589,
9. अग्रवाल रामभरोस – गढ़ा मण्डला के गोंड राजा, 1961 पृ. 45
10. मिश्र डां सुरेश – मध्यप्रदेश के गोंड़ राज मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रविन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, बाणगंगा 2000 पृ.1–6
11. सिंह अन्जु – मण्डला जिले में आदिवासी महिलाओं की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति, का अध्ययन आर.डी वी.वी.जबलपुर शोध प्रबन्ध 2003 ,पृ.152
12. तिवारी डॉ. शिवकुमार, शर्मा डॉ. श्री कमल – मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,सन् 1994 पृ. 74–106
13. दैनिक भास्कर सामाचार पत्र दिसम्बर, 2011, पृ.3

ekuokf/kdkj dk nk'kZfud i{k

Mk- ftrsUnz 'kekZ
एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र, म.गाँ.चि.ग्रा.वि.वि.,चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

vkys[k lkj %& प्रस्तुत शोध आलेख में 'मानवाधिकार' के दार्शनिक पक्ष की गवेषणात्मक विवेचना की गयी है। मानवाधिकार सभ्य समाज का विषय है। आदिम समाज में मानवाधिकारों की कल्पना नहीं थी। समाज 'मात्स्य न्याय' और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के सिद्धांत से संचालित था। सभ्य समाज के उद्भव के साथ 'सहअस्तित्व' की भावना के धरातल पर पैदा हुई 'जिओ और जीनो दो' की विचारधारा आधुनिक युग में मानवाधिकार के रूप में जानी जाती है।

वस्तुतः मानवाधिकार दो विपरीत विचारधाराओं वाली संस्कृतियों के संघर्ष की फलश्रुति है। जड़वाद या भौतिकवाद जिसकी परिणति भोगवादी नैतिकता में होती है, द्वारा मानवाधिकारों का आत्यन्तिक संरक्षण कदापि नहीं किया जा सकता। क्योंकि इस संस्कृति की आधारभूत मान्यता है कि जड़तत्व की ही अन्तिम सत्ता है। नैतिक विधान के रूप में किसी परात्पर चेतना या ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह जीवन का अन्तिम सत्य है और भोग पदार्थों का यावज्जीवन अधिकतम सेवन ही जीवन की पूर्णता है। अर्थ और काम का सेवन और सिद्धि ही नैतिकता का आधार है। नैतिकता विहीन भोग की अवधारणा अंततः आधिपत्य और संघर्ष को जन्म देती है जिसकी फलश्रुति मानवाधिकारों के उल्लंघन के रूप में सामने आती है।

अध्यात्मवाद के अनुसार परमतत्व जड़ न होकर चेतन है। वस्तुतः जड़ नाम की कोई वस्तु नहीं है। जड़ जगत, वनस्पति जगत्, पशु जगत और मानव जगत के रूप में परम चेतन सत्ता का ही न्यूनाधिक्य पाया जाता है।

मनुष्य का स्वरूप एवं अस्तित्व प्रकृति (जड़, वनस्पति एवं पशु–पक्षी) से सर्वथा पृथक् नहीं है। न उसका विरोधी है। मनुष्य और प्रकृति में भोक्ता और भोग्य का सम्बन्ध नहीं है। प्रकृति देवी और सहचरी है। सम्पूर्ण प्राणिमात्र में उसी परम चेतना का दिव्य प्रकाश फैला हुआ है। अतः सभी हमारे बन्धु–बान्धव हैं। प्राणिमात्र का संरक्षण और संवर्धन ही मनुष्य की इति कर्तव्यता है। परोपकाराय सतां विभूतयः। परमचेतना सत्ता को सब कुछ अर्पित करते हुये, उन्हीं की प्रसन्नता के लिये प्राणिमात्र के संवर्धन का प्रयास सच्ची नैतिकता है। जाति, धर्म, रूप, रंग, लिंग, भाषा–वेशभूषा आदि की क्षुद्र सीमितता से ऊपर उठकर, अपनेपन के इस सीमित दायरे को तोड़कर नर से नारायण की अनुभूति करना ही मोक्ष है। यही जीवन की अन्तिम सार्थकता और परम पुरुषार्थ है। यही अध्यात्मवादी संस्कृति है। परस्परपूरकता और सहअस्तित्व जिसके आधारभूत तत्व है। सार रूप में हम कह सकते हैं कि अध्यात्मवादी नैतिक संस्कृति में ही उन मूल्यों और मान्यताओं का समावेश है जिनके अनुपालन से मानवाधिकारों को संरक्षित और संवर्धित किया जा सकता है।

'भूमण्डलीकरण' और 'वैश्विक ग्राम' की अवधारणा के विकास के साथ ही विद्वत जगत में 'मानवाधिकार' को लेकर जहाँ एक तरफ नित नवीन चर्चा, परिचर्चा और संगोष्ठियाँ आयोजित की जा रही हैं वहीं दूसरी तरफ इसके संरक्षण और क्रियान्वयन को लेकर नित–नूतन मानवाधिकार संगठन और कार्यकर्ता पैदा होते जा रहे हैं। सांख्यिकीय आंकड़ों की बाजीगरी को यदि हम नजरअंदाज कर वास्तविकता के धरातल पर चिंतन करें तो हम कह सकते हैं कि मानवाधिकारों का संरक्षण सभ्य समाज के लिये अद्यापि चिंता का विषय बना हुआ है। वस्तुतः जब तक हम मानवाधिकार के दार्शनिक पक्ष (सामान्य जन को समझाने के लिये इसे मानवाधिकार का वैचारिक या सम्प्रत्ययात्मक पक्ष (पकमवसवहपबंस ॅचमबज) भी कहा जा सकता है) को विधिवत् नहीं समझ लेते, अंगीकृत और आत्मार्पित नहीं कर लेते, तब तक मानव सभ्यता द्वारा मानवाधिकारों के संरक्षण के लिये किये जा रहे समस्त प्रयास नाकाफी ही होंगे। मानवाधिकार के दार्शनिक पक्ष की गवेषणात्मक विवेचना की जाय इसके पूर्व विषय की सुस्पष्टता के लिये मानवाधिकार के स्वरूप और उसके वैश्विक परिप्रेक्ष्य पर विहंगम दृष्टिपात आवश्यक है।

मानवाधिकार सभ्य समाज का विषय है। आदिम समाज में मानवाधिकारों की कल्पना नहीं थी। लोग जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं–भोजन, वस्त्र और आवास की समस्याओं से जूझ रहे थे। समाज मात्स्य न्याय से परिचालित था। 'योग्यतम की अतिजीविता' और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का प्राकृतिक और पाशविक सिद्धांत समाज का मूल आधार था। बड़ी मछली, छोटी मछली को निगल जाती थी। स्थायी निवास स्थान, कृषि एवं पशुपालन का ज्ञान, भाषा एवं लिपि का ज्ञान तथा रक्त सम्बन्धों की पवित्रता के ज्ञान के साथ ही सभ्य समाज का उद्भव हुआ और इसी के साथ 'जिओ और जीने दो' की उस भावना का विकास हुआ जो विकसित आधुनिक मानव सभ्यता के साथ 'मानवाधिकार' की अवधारणा के रूप में हमारे समक्ष आयी।

मानवाधिकार व्यक्ति के वे अधिकार हैं, जिनके बिना मानव अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के बारे में सोच भी नहीं सकता, जो कि मानव में मानव होने के फलस्वरूप अन्तर्निहित है। मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो एक मानव होने के नाते मिलने ही चाहिये। ए.ए. सईद मानवाधिकारों को समझाते हुये कहते हैं–''मानव अधिकार का सम्बन्ध व्यक्ति की गरिमा से है एवं आत्मसम्मान का भाव जो व्यक्तिगत पहचान को रेखांकित करता है तथा मानव समाज को आगे बढ़ाता है।'' स्पष्ट है मानवाधिकार प्रकृति द्वारा प्रदत्त अधिकार है। इसलिये समय तथा परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर भी अधिकारों के स्वरूप में विशेष परिवर्तन नहीं होता। अधिकारों से व्यक्ति को स्वतन्त्रता की गारण्टी मिलती है, शोषण और अत्याचारों से मुक्ति मिलती है तथा समाज में ऐसे वातावरण का जन्म होता है जिस वातावरण में व्यक्तित्व विकास के समुचित अवसर सभी को प्राप्त होते हैं। अधिकारों के बिना सभ्य समाज की कल्पना हम नहीं कर सकते।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों को स्पष्ट करने एवं इसे वैश्विक स्वीकृति प्रदान करने के लिये संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा 10 दिसम्बर 1948 को मानवाधिकारों का सार्वत्रिक घोषणा पत्र स्वीकृत किया गया, जिसकी प्रमुख धारायें निम्नवत् हैं–

1. प्रत्येक मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है तथा दर्जा एवं अधिकारों की दृष्टि से समान है।
2. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकार तथा स्वतन्त्रताओं का उपभोग करने का पूरा अधिकार है और जाति, धर्म, भाषा, नस्ल, रंग, जन्मस्थान आदि कारणों से किसी भी व्यक्ति को इस अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।
3. किसी भी व्यक्ति को गुलाम नहीं बनाया जा सकेगा।
4. किसी भी व्यक्ति को क्रूरतापूर्ण अथवा अमानवीय दण्ड या सजा नहीं दी जायेगी।
5. कानून के समक्ष सभी व्यक्ति समान होंगे और किसी भी व्यक्ति को कानून की सुरक्षा से वंचित नहीं किया जायेगा।
6. किसी भी व्यक्ति को गैर कानूनी ढंग से बंदी नहीं बनाया जा सकता। कैद में नहीं रखा जा सकता अथवा देश से निकाला नहीं जा सकता।
7. प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों की रक्षा हेतु न्यायालय की शरण ले सकेगा।
8. न्यायालय में अपराध सिद्ध होने तक किसी को भी अपराधी नहीं ठहराया जायेगा।
9. किसी के निजी जीवन में अथवा व्यक्तिगत पत्र–व्यवहार में दखल देने का अधिकार किसी को नहीं होगा।
10. हर व्यक्ति को अपने देश की सीमाओं के भीतर कहीं भी घूमने अथवा निवास करने की स्वतंत्रता होगी।
11. हर व्यक्ति को राष्ट्रीयता का अधिकार होगा।
12. हर वयस्क पुरुष और महिला को अपनी पसंद का जीवनसाथी चुनने का, उसके साथ विवाह करने का और अपना परिवार बनाने का अधिकार होगा। राष्ट्रीयता जाति, धर्म, आदि विवाह में बाधा नहीं डाल सकेंगे।
13. हर व्यक्ति को भाषण, लेखन तथा विचारों के अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता होगी।
14. हर व्यक्ति को अपनी पसंद का धर्म अपनाने और उस धर्म के अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता होगी।
15. हर व्यक्ति को शान्तिपूर्वक सभा लेने, संघ अथवा संगठन स्थापित करने का अधिकार होगा किन्तु इस कार्य के लिये किसी पर भी जबरदस्ती नहीं की जायेगी।
16. हर व्यक्ति को शासन कार्यों में हिस्सा लेने का और अपनी योग्यता के अनुसार शासन या प्रशासन में उचित स्थान प्राप्त करने का अधिकार होगा।
17. समाज की एक इकाई के रूप में हर व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा।
18. हर व्यक्ति को काम का, उस काम के बदले उचित पारिश्रमिक पाने का, आजीविका के लिये कोई व्यवसाय चुनने का अधिकार होगा। एक जैसे काम के लिये सभी को बिना किसी भेदभाव के समान वेतन दिया जायेगा।
19. हर व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार होगा। व्यक्तित्व का विकास तथा मानवीय अधिकार और मूलभूत स्वतंत्रता की रक्षा करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होगा।

यहाँ पर प्रश्न यह पैदा होता है कि मानवाधिकार के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ की उक्त सार्वत्रिक घोषणा एवं वैश्विक ग्राम की अवधारणा के विकास के बावजूद भी मानवाधिकारों का उल्लंघन क्यों हो रहा है? मानवीय सभ्यता खुले आसमाँ के नीचे परस्परपूरकता और समरसता के साथ अपना विकास क्यों नहीं कर पा रही है? वस्तुतः मानवाधिकारों का उल्लंघन अथवा संरक्षण दो विपरीत विचारधारा वाली संस्कृतियों–भौतिकवादी एवं भोगवादी संस्कृति तथा

अध्यात्मवादी नैतिक संस्कृति के वैचारिक संघर्ष की फलश्रुति है।

जड़वाद एवं भोगवाद के सिद्धांत पर आधारित उपभोक्तावादी संस्कृति में मानवाधिकारों का संरक्षण और सम्पोषण नहीं हो सकता है। ''ईसावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्याम् जगत'' और 'ममैवांशो जीवलोकः जीवभूतः सनातनः का आध्यात्मिक संदेश जब तक विश्व मानवता आत्मार्पित नहीं कर लेती है तब तक मानवाधिकारों का संरक्षण और संवर्द्धन नहीं किया जा सकता। अर्थात् अध्यात्मवादी नैतिक संस्कृति में ही वह मूलभूत विशेषता होती है जिस पर मानवाधिकारों का भव्य प्रासाद निर्मित एवं विकसित किया जा सकता है। आइये इस निष्कर्ष की नीरक्षीर विवेचना करें।

भौतिकवाद वह तत्वशास्त्रीय सिद्धांत है जिसके अनुसार विश्व का मूल तत्व जड़ द्रव्य या भौतिक द्रव्य (डंजजमत) है और संसार की समस्त हस्ती चाहे वह जड़ पदार्थ हो या जीवधारी या चेतन, उसी से उत्पन्न या निर्मित है। भौतिकवाद की प्रवृत्ति स्वभावतः विज्ञानवादी इन्द्रियानुभववादी, वास्तववादी आदि हो जाती है। जो कुछ ज्ञानेन्द्रियों के क्षेत्र में आता है वही वास्तविक है और सब कुछ कल्पनामात्र है। सामने जो भौतिक विश्व नजर आता है, वश वही वास्तविक है उसके अलावा अन्य कोई आध्यात्मिक संसार नहीं है।[i] संसार के निर्माण के लिये किसी परम चेतन सत्ता या ईश्वर को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

जड़वाद या भौतिकवाद की यह दार्शनिक विचारधारा संस्कृति और सभ्यता के सन्दर्भ में भोगवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के रूप में जानी जाती है। भौतिकवादी तत्वमीमांसा का प्रभाव इस संस्कृति को मानने वालों की आचार मीमांसा पर पड़ा। परिणाम स्वरूप वे परलोक विषयक् सभी मान्यताओं को निरी मूर्खता समझने लगे। ''चार्वाक केवल इस जीवन में वैषयिक सुख की प्राप्ति को ही मानव जीवन का परम लक्ष्य मानते हैं। जब मरण के उपरांत आत्मा का अस्तित्व ही नहीं रहता तब स्वर्ग, मोक्ष अथवा निर्वाण का प्रश्न ही नहीं उठता।''[ii]

मृत्यु के बाद आत्मा का जन्म नहीं होता इसलिये पुनर्जन्म भी काल्पनिक वस्तु है। स्वर्ग, नरक, हवन, दान, पुण्य और पाप इत्यादि की अवधारणा मूर्ख पण्डितों के व्यर्थ प्रलाप हैं।

''न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः
अग्निहोत्रं त्रयोवेदस्त्रिदण्डं भस्म गुंठनम्
बुद्धि पौरुष हीनानां जीव केति वृहस्पतिः
त्रयो वेदस्य कर्तारो भण्ड धूर्त निशाचराः
जर्भरी तुर्फरीत्यादि पाण्डितानां वचः स्मृतम्।''[iii]

जहाँ तक मानव हेतु प्राप्तव्य पुरुषार्थ का प्रश्न है भोगवादी (चार्वाक) धर्म और मोक्ष को पुरुषार्थ मानते ही नहीं। 'अर्थकामौपुरुषार्थो'[iv] अथवा 'काम एकैक पुरुषार्थः'। काम ही जीवन का परम पुरुषार्थ है। स्त्री आदि के आलिंगनादि से उत्पन्न सुख ही पुरुषार्थ है। दूसरा कुछ पुरुषार्थ नहीं।

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वाधृतं पीवेत्
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः[v]

अर्थात् जब तक जीओ सुख से जीओ कर्ज लेकर घी पीओ। इस देह या शरीर के भस्मीभूत हो जाने पर पुनरागमन कहाँ। हम लोगों का अस्तित्व शरीर में तथा वर्तमान जीवन तक ही सीमित है। अतः इस शरीर के द्वारा जो सुख प्राप्त हो सकता है वही हमारा एकमात्र लक्ष्य होना चाहिये। परलोक सुख की झूठी आशा में रहकर हमें इस जीवन के सुख को भी ठुकरा नहीं देना चाहिये। ''वरमद्यः कपोतः न श्वः मयूरः''[vi] जड़वाद का अद्यतन संस्करण पाश्चात्य जगत में अर्थ क्रियावाद के रूप में सामने आया है जिसमें शाश्वत और सार्वभौमिक सत्य के समस्त मापदण्ड ध्वस्त कर दिये गये और घोषणा कर दी गयी।

"Truth is not a readymade property of knowledge but it is made as health, wealth and strength are made in the course of life".

जिस तरह से जीवन में धन और स्वास्थ्य अर्जित किया जाता है उसी तरह सत्य का निर्माण किया जाता है। जो मेरे लिये उपयोगी और सुखद है। वही सत्य है।

यह है भोगवाद की अन्तिम फलश्रुति जिसमें भोगवादी नैतिकता समस्त मर्यादाओं और वर्जनाओं को तोड़ते हुये भोग के तांडवनर्तन को खुला छूट देती है। तभी तो 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' का चरित्र नायक आज 'चोली के पीछे क्या है' गुनगुनाता हुआ भोगवाद की पंकिल गलियों में भटकने के लिये अभिषप्त है। नारी के साथ क्या नहीं हो सकता। नारी मानो भोग की वस्तु हो। जब चाहा, जहाँ चाहा, जैसा चाहा वैसा भोग किया। नवधनाढ्यों एवं तथाकथित सभ्यों के मध्य बढ़ रहा एक शौक तो देखिये–'वाइफ स्वैपिंग'–'पत्नी बदलना' सारी नैतिक वर्जनायें एक ओर रख पढ़े–लिखे नवधनाढ्य अपना टेस्ट बदलने के लिये कार की चाभियाँ बदलते हैं, जिनके पास जिसकी चाभी आ जाती है उसकी पत्नी से वह उस रात मौज–मस्ती कर सकता है। इसमें पत्नी को कुछ कहने का अधिकार नहीं, क्योंकि उसकी शापिंग हेतु जिम–सजने आदिका समुचित खर्च पति महाशय दे रहे हैं।

भौतिकवाद एवं भोगदवाद के मूल में आधिपत्य और हिंसा की प्रवृत्ति होती है और इसी प्रवृत्ति के माध्यम से वह स्वयं के ऐन्द्रिक सुख के लिये नैतिकता की समस्त मान्यताओं और वर्जनाओं को तोड़ देता है। यदि किसी के अधिकारों का हनन करने से या किसी को दुःख देने से वैयक्तिक सुख में वृद्धि होती है तो अर्थ क्रियावादी मान्यतानुसार इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। निश्चित रूप से भोगवादिता का यह आचार शास्त्र मानवीय चेतना को पतन के गम्भीर गह्वर में ढकेल देगा। देहवाद को बढ़ावा देते हुये कदाचित परस्त्रीगमन को भी मौन स्वीकृति प्रदान करेगा।

जब संसार का स्वरूप ही भौतिक है और मानव जीवन का उद्देश्य अधिकतम इन्द्रिय सुख प्राप्त करना है और यही नैतिकता का मापदण्ड भी है तो ऐसी स्थिति में काहे का मानवाधिकार और काहे की स्वतन्त्रता और समानता। शरीर भाव में जाग्रत रहने वाला मनुष्य यदि आहार, निद्रा, भय, मैथुन के साधारण कार्यक्रम पर चलता रहे तो भी उस पशुवत जीवन में निरर्थकता ही है, सार्थकता कुछ नहीं। यदि उसकी इच्छायें जरा अधिक उग्र या आतुर हो जॉय, तब तो समझिये कि वह पूरा पापपुंज शैतान ही बन जाता है, अनीतिपूर्वक स्वार्थ साधने में उसे कुछ हिचक नहीं होती। इस दृष्टिकोण के व्यक्ति न तो स्वयं सुखी रहते हैं और न दूसरों को सुखी रहने देते हैं। काम और लोभ ऐसे तत्व हैं कि कितना ही अधिक भोग क्यों न मिले वे तृप्त नहीं होते। जितना भी मिलता है उतनी ही तृष्णा के साथ–साथ अशांति चिंता, कामना तथा व्याकुलता भी दिन दूनी रात चौगुनी होती चलती है। इन भोगों में जितना सुख मिलता है उससे अधिक गुना दुःख भी साथ ही साथ उत्पन्न होता चलता है। इस प्रकार शरीर भावी दृष्टिकोण मनुष्य को पाप, ताप, तृष्णा तथा अशांति की ओर घीसट ले जाता है।[vii]

भोगवादी अर्थशास्त्र–एक ऐसा अर्थदर्शन जिसने मनुष्य को बना दिया अर्थपशु और बाजार को बना दिया भोगवाद और देहवाद का खुला चारागाह। 'बोया पेड़ बबूल का आम कहाँ से होय'' जब दृष्टि ही भोगवादी है तो 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' का भाव कैसे जागरित होगा। मानवाधिकारों का संरक्षण और संवर्द्धन तो सहजीवन और सामंजस्य से होता है, परस्परपूरकता रूपी जल से जिसे सींचा जाता है। भोगवाद की आंधी में सहजीवन के आधारभूत मूल्य–प्रेम, करुणा, उदारता, क्षमाशीलता और अहिंसा धूलिलुंठित हो ही जायेंगे। और परिणाम होगा मानवाधिकारों का उल्लंघन और हनन। जब तक हमें परपीड़ा का बोध नहीं होग तब तक मानवाधिकारों की रक्षा, संरक्षण और संवर्द्धन कपोलकल्पना मात्र रह जायेंगे। स्पष्ट है जब तक मनुष्य की भोगवादी सोच में परिवर्तन नहीं होता है तब तक मानवाधिकारों की रक्षा नहीं की जा सकती। कानून और दण्ड के द्वारा समाज के वाह्य स्वरूप पर कुछ हद तक तो नियंत्रण पाया जा सकता है परन्तु समाज की आत्मा को नहीं बदला जा सकता। मानवाधिकारों के संरक्षण और संवर्धन हेतु प्राणिमात्र में 'एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा' का स्थायी भाव भरना होगा जो भोगवादी नैतिकता में कथमपि सम्भव नहीं है।

आइये, अब हम अध्यात्मवाद के स्वरूप और अध्यात्मवादी संस्कृति की विशेषताओं पर नजर डालें। अध्यात्मवाद वह दार्शनिक सिद्धांत है जिसके अनुसार मूल सत्ता चेतन स्वरूप या अध्यात्मस्वरूप है और सब कुछ उसी का प्रतिफल है। जिसे हम जड़ कहते हैं वस्तुतः वह जड़ नहीं है। वह है चेतना की न्यूनतम अभिव्यक्ति। जिसे अज्ञानवश हम अचेतन कह देते हैं।'' चैतन्य को मूल सत्ता मानने के कारण अध्यात्मवाद यह नहीं मानता कि विश्व के संचालन में प्रकृति और उसके नियम ही सब कुछ हैं। वह सब कुछ किसी न किसी आध्यात्मिक शक्ति या सत्ता द्वारा संचालित मानता है। विश्व के प्रकट कार्यकलापों के पीछे एक गहरी आध्यात्मिक सार्थकता है जो किसी निश्चित आदर्श की ओर अग्रसर हो रही है। जो कुछ इन्द्रियों के सामने है और उनकी पकड़ में आता है वही सब कुछ नहीं है बल्कि वास्तविक तत्व इन्द्रियों की पकड़ के परे है। अतीन्द्रिय है और उसकी पकड़ अंतःप्रज्ञा या रहस्यानुभूति आदि के द्वारा हो सकती है। वास्तविकता का साक्षात्कार करने के लिये कोरी इन्द्रियाँ या कोरी बुद्धि काफी नहीं है। जीवन में आदर्श मूल्यों का महत्व है तथा मनुष्य जीवन उन्हीं की प्राप्ति के लिये है। नैतिकता, धर्म आदि जीवन के इन आदर्श मूल्यों का वरण एवं सेवन करते हैं। इसलिये ये मानव जीवन के लिये आवश्यक हैं। जीवन का आदर्श भौतिक पदार्थों की अधिकतम उपलब्धि नहीं बल्कि नैतिक, आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति है।[viii]

उल्लेखनीय है कि अध्यात्मवादी संस्कृति का भी इतिहास और विकास भोगवादी संस्कृति के साथ ही साथ सभ्यता के उषःकाल में ही प्रारम्भ हो गया था। वैदिक ऋषि सभ्यता के उषःकाल में ही मानवीय स्वरूप का चिंतन करते हुये कहता है ''कोऽहं भो!'' अरे! मेरा क्या स्वरूप है? लौकिक चाक्चिक्य युक्त भोग पदार्थों से भरा पड़ा संसार माया या अज्ञानता का संसार है। सत्य तो इसके पीछे छिपा हुआ है–

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं।
तत्वं पूषण अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीतिं।[ix]

क्या मनुष्य त्रिविध ऐषणाओं की सिद्धि की तलाश में भटकता हुआ वन्य पशु है? आहार, निद्रा, भय और मैथुन की सर्वतोभावेन सिद्धि करता हुआ क्या वह मात्र देहाभिमानी जीव है या उसका स्वरूप आध्यात्मिक

है? क्या वह भटका हुआ देवता है? कंचन–कामिनी से घिरा हुआ यह जगत क्या अपने यथार्थ स्वरूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है अथवा यह सब माया है, अनित्य और दुःखकारक है। अध्यात्मवाद के अनुसार जगत और जागतिक सम्बन्ध अनात्म, अनित्य और दुःखद है। व्यक्ति अज्ञानता के कारण इनमें आत्मभाव, नित्यता और सुख की अनुभूति करता है। भोगी एक ऐसे भिखारी की तरह होता है जिसकी मांग कभी पूरी नहीं होती। वह घोर अतृप्ति और असंतुष्टि की ज्वाला में यावज्जीवन जलता रहता है

तृष्णा न जीर्णाः वयमेव जीर्णाः
भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।।

कदाचित इसीलिये धन पद प्रतिष्ठा में डूबे मनुष्यों को ऋषि 'मूढ़' की संज्ञा देता है।

''न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढ़म्
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।।''[x]

भोग–वासनाओं की चादर न कभी छोटी होती है और न कभी झीनी या कमजोर। भोग वासनाओं की पंकिल गलियों में जीव जन्मजन्मान्तर तक भटकता रहता है। ''पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्''। मनुष्य के यथार्थ स्वरूप का उद्घाटन करते हुये वेदान्त कहता है–

तत्वतः मनुष्य रूप, रंग, लिंग, भाषा–वेशभूषा से परे ब्रहम स्वरूप है। अज्ञानता के कारण वह स्वयं को बांध लेता है जागतिक मोहपाश में। धर्म, जाति, रूप, रंग, लिंग, भाषा–वेशभूषा की क्षुद्र सीमितता में। ऐसे माया–मोह में आसक्त विषयी मनुष्यो को ऋषि निर्देशित करता है–

त्वङमांसमेदोऽस्थि पुरीष राशा
वहं मतिं मूढ़जनः करोति।
विलक्षणं वेत्ति विचारशीलो
निजस्वरूपं परमार्थ भूतम्।।[xi]
अत्रात्मबुद्धिं त्यजमूढ़ बुद्धेः
त्वङमांसमेदोऽस्थि पुरीष राशौ
सर्वात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे
कुरुश्व शान्तिं परमां भजस्व।।[xii]

आचार्य श्री रामशर्मा का मन्तव्य है कि ''वंश, वर्ण, व्यवसाय या पद शरीर का होता है। शरीर मनुष्य का एक परिधान है, औजार है। परन्तु भ्रम और अज्ञान के कारणमनुष्य अपने आप को शरीर ही मान बैठता है और शरीर के स्वार्थ तथा अपने स्वार्थ को एक कर लेता है। इसी गड़बड़ी में जीवन अनेक अशांतियों, चिंताओं एवं व्याधियों का घर बन जाता है।[xiii]

भारतीय आर्ष वाङमय जगत और जागतिक सम्बन्धों के मिथ्यातत्व के कथानकों/आख्यानों से भरा–पटा है। चाहे वह कठोपनिषद में वर्णित यम–नचिकेता संवाद हो या छान्दोग्योपनिषद में वर्णित यम–विरोचन संवाद सिद्धांर्थ की राजकीय वैभव–विलास सहित पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल का परित्याग कर महाभिनिष्क्रमण यात्रा। सर्वत्र 'सर्व दुःखम' 'सर्व अनात्मकम्' की ही गूँज सुनाई पड़ती है।

जब आखिल ब्रह्माण्ड (चराचर) में एक ही परम चेतना का प्रकाश फैला है तो धर्म जाति, रूप, रंग, लिंग, भाषा आदि के आधार पर कैसा भेदभाव। आचार्य शंकर कहते हैं–

मोक्षस्य कांक्षा यदि वै तवास्ति
त्याजात् दूरात विषयान् विषं यथा
पीयूषवत्तोष दया क्षमार्जव
प्रशान्ति दान्तीर्भज नित्यमादरात।।[xiv]

यदि तुझे मोक्ष की इच्छा है तो विषयों को विष के समान दूर ही से त्याग दे और संतोष, दया, क्षमा, सरलता, शम और दम का आदर पूर्वक सेवन करे।

अध्यात्मवाद की उक्त तत्वमीमांसा की अनुभूति होते ही अपने और पराये का भेद मिट जाता है। दैहिक चेतना, वैश्विक चेतना के रूप में रूपान्तरित हो जाती है फिर तो करुणा का ऐसा प्रसार होता है कि वह अपने आगोश में प्राणिमात्र को सिमेट लेती है। ऐसी करुणा में आधिपत्य, आक्रामकता और हिंसा के लिये किंचिदपि अवकाश नहीं। यह अवस्था मानवीय चेतना के अभ्युदय की वह रूपान्तरित अवस्था है जहाँ व्यक्ति 'जिओ और जीने दो' के सिद्धांत पर कार्य करने लगता है। 'परोपकाराय सतां विभूतय' उसका नैसर्गिक स्वभाव हो जाता है। 'हममें–तुममें, खड्ग खंभ' में सबमें व्यापत 'राम' की दिव्य अनुभूति उसे अन्त्यजों को भी गले लगाने के लिये बाध्य कर देती है। इस अध्यात्मवादी संस्कृति की आचार–मीमांसा का उल्लेख उपनिषदों में प्राप्त होता है। उपनिषद् आचार मीमांसा में एकत्व दर्शन, सर्वभूत हित कामना, अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन, रागद्वेष त्याग, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह त्याग, सर्वत्र आत्मदर्शन करना, पितृपरितोष, गुरुजनों का सम्मान, नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान इन्द्रिय संयम के साथ ही साथ जीवन के साधारण से साधारण क्रियाकलापों का वर्णन है यथा प्रातःकाल कब उठा जाये, उठने के बाद सर्वप्रथम क्या किया जाये। इसके लिये शौच, दन्तधावन

स्नान, भोजन, शयन आदि सभी की विधि बतलाई गयी है।[xv]

जब चराचर जगत आत्मप्रतिरूप है तो काहे का शोषण और काहे की शोषण वृत्ति।

''ओ पृथ्वी! सातो सागर ओ
तुम मेरे पुत्र पुत्रियाँ हो
ओ सभी वनस्पति, पशु–पक्षी
टूटे सब सीमा बन्धन लो
गाओ अजस्र स्वर से गाओ
ओ त्राहि माम। ओ त्राहि माम्।।''[xvi]

ऐसे नैतिक और सदाचारी व्यक्ति की प्रत्येक पदचाप में मानवाधिकारों के संरक्षण और पालन की अनुगूंज सुनाई पड़ती है। ऐसे ही समदर्शी व्यक्तित्व मानवता के सच्चे हितैषी और संरक्षक होते हैं। उनके लिये कंचन और काष्ठ में कोई भेद नहीं होता है।

विद्या विनय सम्पन्ने ब्रह्मणे गवि हस्तिनि
शुनि चैव स्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।[xvii]
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।[xviii]

मानवाधिकारों के उल्लंघन के प्रमुख क्षेत्रों में चारित्रिक भ्रष्टाचार और आर्थिक भ्रष्टाचार को लिया जा सकता है। चारित्रिक भ्रष्टाचार में स्त्री को भोग्या मान लिया जाता है और आर्थिक भ्रष्टाचार में अर्थ और काम को ही परम पुरुषार्थ मान लिया जाता है। अध्यात्मवादी नैतिक संस्कृति में शम, दम, आदि के माध्यम से चरित्र की सर्वथा रक्षा करने का विधान है–

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत वित्तमायाति यातिच
अक्षीणोवित्ततः क्षीणो वृत्तस्तु हतो हतः।।

भारतीय नैतिक संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, चतुर्पुरुषार्थों की व्यवस्था कर मनुष्य द्वारा किये जाने वाले आर्थिक भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाया गया है। ऐसे 'काम' का सेवन नहीं करना चाहिये जो अर्थबाधित हो। ऐसे अर्थ (धन) का सेवन नहीं करना चाहिये जो धर्म बाधित हो और ऐसे धर्म का सेवन नहीं करना चाहिये जो मोक्ष बाधित हो।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अध्यात्मवादी नैतिक संस्कृति में ही उन मूल्यों और मान्यताओं का समावेश है जिनके अनुपालन से न केवल मानवाधिकारों के उल्लंघन को रोका जा सकता है बल्कि मानवाधिकारों को सुरक्षित और संवर्द्धित भी किया जा सकता है। मेरी समझ से ईसावास्योपनिषद का प्रथम मन्त्र मानवाधिकारों के संरक्षण और संवर्धन की सर्वोच्च सैद्धान्तिक और व्यावहारिक प्रयोगशाला है–

ईसावास्यमिदं सर्व यत्किंचजगत्यांजगत्
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्[xix]

ईश्वर को निरन्तर अपने साथ रखते हुये सदा–सर्वदा उनका स्मरण करते हुये ही तुम इस जगत में ममता और आसक्ति का त्याग करके केवल कर्तव्य पालन के लिये ही विषयों का यथाविधि उपभोग करो। वस्तुतः ये भोग पदार्थ किसी के भी नहीं है। मनुष्य भूल से ही इनमें ममता और आसक्ति कर बैठता है। ये सब परमेश्वर के हैं और उन्हीं की प्रसन्नता के लिये इनका उपयोग होना चाहिये।

काश। भोगवादी संस्कृति में पला बढ़ा मानस अध्यात्मवादी संस्कृति के उक्त नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में उतार पाता, फलतः मानवाधिकार के सन्दर्भ में निम्नोक्त आर्ष वाणी साकार हो पाती–

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःख भाग्भवेत्।।

lUnHkZ lph %&

i तिवारी, केदारनाथ (1993) तत्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा। मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ.सं. 30–31
ii पाण्डेय, प्रो. संगमलाल (2002) भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण। सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, पृ.सं.84
iii माधवाचार्य (व्याख्याकार मधुसूदन सरस्वती) सर्वदर्शन संग्रह, पृ.सं.4
iv अर्थकामौपुरुषार्थो–27 वार्हस्पत्य सूत्र
v वार्हस्पत्य सूत्र 85, सर्वदर्शन संग्रह
vi माधवाचार्य, सर्वदर्शन संग्रह
vii आचार्य, शर्मा श्रीराम (2010) मैं क्या हूँ? युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट मथुरा (उ.प्र.), पृ.सं.6
viii तिवारी, केदारनाथ (1993) तत्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा। मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ.सं. 41–42
ix मुण्डकोपनिषद 1.1.3 अन्तर्गत ईशादि नौउपनिषद, प्रकाशन गीता प्रेस गोरखपुर
x कठोपनिषद 1.2.6 अन्तर्गत ईशादि नौ उपनिषद, प्रकाशन, गीता प्रेस, गोरखपुर
xi श्रीमदाद्यशंकराचार्य, विवेक चूड़ामणि, श्लोक सं.16। गीता प्रेस गोरखपुर
xii वही, श्लोक सं.163
xiii श्रीराम शर्मा 'आचार्य' (2010) मैं क्या हूँ? प्रकाशन युग निर्माण योजना, विस्तार ट्रस्ट मथुरा, पृ.सं.4

xiv श्री मदाद्यशंकराचार्य–विवेक चूड़ामणि, श्लोक सं.84, गीता प्रेस, गोरखपुर

xv तातेड़ सोहनराज (2011) ज्ञानरश्मियाँ, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ.सं.205

xvi डॉ. जितेन्द्र (2003) समकालिन अद्वैत चिंतन, बी. एस.शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा, पृ.सं.162

xvii श्रीमद्भगवद्गीता, 5/18 अनुवादक श्री हरिकृष्ण दास गोयन्दका, प्रकाशन गीता प्रेस, गोरखपुर

xviii वही, 6/29

xix ईश्वास्योपनिषद, प्रथम श्लोक अन्तर्गत ईशादि नौ उपनिषद, गीता प्रेस गोरखपुर